महासागर की मछली

मदन लाल शर्मा

मूल्य : तीस रुपये मात्र
साहित्यागार
संस्करण : 1986
प्रकाशक
साहित्यागार
एस० एम० एस० हाईवे,
जयपुर–302 003
मुद्रक : एजुकेशनल प्रिण्टर्स, जयपुर–3

आत्म-कथ्य

इस पूरे उपन्यास मे आरम्भ से लेकर अन्त तक "मैं" ही 'मै" ही हूँ। फिर भी वास्तव मे "मैं" कहीं भी नही हैं। इस 'मैं" को जीने के लिए, इसे पूर्णता देने के लिए, मै कहाँ-कहाँ नही भटका, किस-किस से नही मिला? मैं जहाँ-जहाँ भी गया हूँ, चाहे वह आश्रम हो, चाहे स्कूल, चाहे दामोदर नदी के मुहाने पर बना क्वार्टर, चाहे जेल की चारदीवारी, चाहे पिलानी का बिरला शिक्षण सस्थान, मैंने स्वय को उस पात्र मे ढाल कर देखा है। उस पात्र के साथ मिल बैठ कर जिया हूँ। मेरी महीना-महीनो की लम्बी रातो की नीद खराब होने का मुझे तनिक भी अफसोस नही होगा। यदि आप पूरा उपन्यास पढ लेने के बाद यह मान लें कि इस उपन्यास का "मैं" सचमुच मे "मै" ही हूँ। आश्रम का बाबा मुक्तिनाथ म हूँ, आरती मेरी पत्नी है, चन्दा और काजल मेरी ही बाल सहेलियाँ है, पूजा को मैंने ही पूजा था, जया मेरी ही बेटी है।

विधाता मनुष्यो का सृजन करता है, कृतिकार पात्रो का। जितना प्यार विधाता को इस सृष्टि से है, उतना ही प्यार एक कृतिकार को अपने द्वारा सृजित पात्रों से होता है। आरती के साथ-साथ मैंने मेरी पत्नी को जगाया है, यादवेन्द्र के साथ मैं भी जेल रहा हूँ। बाबा मुक्तिनाथ के साथ मैने आश्रम मे निवास किया है, चन्दा और काजल को मैंने यादवेन्द्र के साथ-साथ प्यार किया है। पूजा को भगाने वाला यादवेन्द्र के साथ-साथ मैं भी हूँ। जया को मेरी पत्नी न ही पाला और पढाया है। यादवेन्द्र के साथ-साथ जया का पिता मै भी हूँ। सच कहता हूँ, इन पात्रो से मुझे अत्यधिक स्नेह हो गया है, इन्हे कभी नही भूल पाऊँगा। शायद कभी नही।

और अब सच बात भी

इस उपन्यास के हर पात्र को मैंने जीवन के कर्मक्षेत्र से ही उठाया है। चाहे टुकडो-टुकडो मे ही क्यो न उठाया हो। अपने ही शब्दो मे कहूँ तो किसी एक व्यक्ति के जीवन अंश को लिखना जीवनी कहलाती है और कई पात्रो के विभिन्न जीवन-अंशो को चुन कर, काट छाट कर जोड देने को उपन्यास कहते है।

सबसे अन्त मे अपना परिचय भी

वैसे तो कृति ही कृतिकार का सर्वश्रेष्ठ परिचय है। फिर भी आपकी जिज्ञासा को शान्त करने के लिए इतना बता देना पर्याप्त समझता हूँ कि मैं पेशे से एक वकील हूँ, मन से कवि। मैंने इन दोनो के क्षेत्र को अलग-अलग खाचो मे बांट रखा है। न तो आज तक मेरी कविता कभी मेरे वकील के बीच मे आई, न मेरा वकील कभी मेरी कविता के आगे आया। अर्थ के मामले में मैं जीवन मे कभी कजूस नही रहा। शब्दो की कजूसी मेरी प्रकृति है, मेरे व्यवसाय मे भी और लेखन मे भी। जो आदमी कजूस होता है, उसके पास सचय तो हो ही जाता है। शब्दो के सचय को जब व्यय करना शुरू किया तो परिणाम मेरा यह पहला उपन्यास "महासागर की मछली" आपके हाथो मे है।

समाप्त करने से पूर्व आभार आप सबका

इस उपन्यास मे मैंने जितने भी पात्रो का सृजन किया है, वे हम मे से ही कोई एक है, यदि आपको ऐसा किसी एक पात्र के लिए भी महसूस हो तो यह अहोभाग्य होगा मेरा भी और उस पात्र का भी जिसे आपने इतना समीप्य दिया। अच्छाई और बुराई साथ-साथ चलती हैं। पाप और पुण्य एक-दूसरे की पहिचान है। एक दूसरे के पूरक है। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व ही नही। इस विषय मे आपकी प्रतिक्रियाएँ मेरी प्रोत्साहन होगी।

साधुवाद सहित

आपका ही
मदन लाल शर्मा

मुझे यह पत्र आज ही प्राप्त हुआ है। अभी तक पशोपेश मे हूँ। इसे पत्र कहूँ या आमन्त्रण पत्र ? सुबह से ही यह निश्चय नही कर पा रहा हूँ। वसे इस बात से कोई विशेष अन्तर पडने वाला नही है। फिर भी किसी वस्तु को उसका सार्थक नाम देना ज्यादा अच्छा तो लगता ही है, तर्कसगत भी होता है। वस्तु का स्वरूप वही रहता है, किन्तु परिचित नाम उसका सम्पूण परिचय दे देता है। तोता को हम एक पक्षी भी कह सकते है ज्यादा खुलासा कहे तो हरे रग का पक्षी भी कह सकते है, लेकिन यह तोता का सम्पूण परिचय नही है। तोता नाम क्योकि परिचित हो चुका है, इसलिए इस नाम से तोता का सम्पूर्ण व्यक्तित्व, हरा रग, लाल चोच, गले मे कठी, मिट्ठू-मिट्ठू के शहद घोलते शब्द ये सब मिलकर एक सम्पूर्ण तोता का निर्माण करते है। ऐसे ही पत्र एव आमन्त्रण-पत्र । पत्र, आमन्त्रण-पत्र से बडा होता है यह बात तो सच है, किन्तु इससे भी बडा सच यह है कि मै आज सुबह से ही इन दोनो के व्यावहारिक वर्गीकरण के समीकरण को नही सुलझा पा रहा हूँ। आप यही सोचेंगे और सोचना भी चाहिए कि क्या जरासी बात का बतगड बना दिया है। किन्तु ठहरिये महाशय, ऐसी बात नही है। जो पत्र आज, इस समय मेरे हाथ मे है, यदि वह पत्र आज इसी समय आपके हाथ मे होता और आप मेरी ही जगह बैठे होते तो यकीन मानिये, आप यही सोच रहे होते, जो मै इस समय सोच रहा हूँ।

हमारे मन मे विचारो की एक शृ खला होती है। हमारे मे मेरा साफ एव निर्विवाद अर्थ मेरे से ही है। आप इसमे शामिल होना चाहे, बेशक होइए वरना मेरी ओर से कोई आग्रह नहीं है। आज, अभी, बस अभी तो मैं आत्मकेन्द्रित ही ज्यादा हूँ। विचारो की शृ खला की बात चली तो एक बात जरूर कहूँगा। हर आदमी के मन मे विचार होते है। उनको थोडा-थोडा सब जानते है। कुछ विचार उनस थाड भीतर, फिर और भीतर फिर और भीतर यह शृ खला चलती ही जाती है। कहते है रेगिस्तान की सुनहरी मिट्टी के नीचे, बहुत नीचे समुद्र हिलोरें मार रहा है। झील नहीं समुद्र। अथाह पानी का समुद्र, लेकिन उसे हम देख नही सकते। वैसे ही हमारे मन के विचार, एक न एक बिंदु पर समुद्र की तरह हिलोरे ले रहे है लेकिन उन सबस क्या? यह सब बातें बताकर मैं आपको व्यर्थ की परेशानी मे नहीं डालना चाहता। न आपको ऐसी बातो मे इस समय अपना दिमाग ही खपाना चाहिए। बात बहुत छोटी सी चीज को लेकर शुरू हुई थी, पर छोटी-सी आपके लिए है। मैं आपकी बात से कतई तौर पर सहमत नही हो सकता। साफ ही कह दूँ, होना भी नही चाहता। इस पत्र को या आमन्त्रण पत्र को एक तरफ फेंक दूँ, फिर अपने किसी और काम मे लग जाऊँ, यही तो चाह रह है न आप? आपका काम तो शायद आधी बात मान लेने भर मे चल जाय। मैं कोई दूसरे काम मे लगूँ या नहीं, बस इस पत्र को या आमन्त्रण-पत्र का फेंक भर दूँ, किन्तु मैं ऐसा हरगिज करने वाला नहीं हूँ।

ऐसी बात भी नही है कि जिन्दगी मे यह पहला ही पत्र हो, जो मुझे प्राप्त हुआ है। पत्र तो इससे पहले भी आते ही रह ह, इसके बाद भी आते ही रहगे। सब पत्रो का अपना-अपना भूत, भविष्य और वतमान होता है। पत्र का इतिहास देश-काल के इतिहास से कम रुचिकर नही होता। आप अनुमति दे तो मैं

यह भी वह सकता हूँ, पत्र कालान्तर मे इतिहास का ही एक भाग हो जाता है। कई पत्रो ने इतिहास लिखा है, इस बात की साक्षी भी इतिहास ही देता है। साक्षी यानी गवाही, गवाही याने पक्ष-समर्थन। पक्ष-विरोध भी हो सकता है, किन्तु जहाँ विरोध की स्थिति उत्पन्न हुई, वही गवाह को पक्षद्रोही घोषित कर दिया जाता है और पक्षद्रोही गवाह किसी काम का नही, किसी के भी काम का नही। लेकिन इस बात की आज के इस पत्र से, जो इस समय मेरे हाथ मे है कोई बहुत ज्यादा सुसगति नही है, थोडी बहुत सार्थकता, सम्भावनाओ से जरूर लगती है। यह तो बात का एक पहलू हुआ। दूसरा पहलू दूसरी तरह का हो सकता है, हो सकता है क्या, है। सचमुच मे ही दूसरी तरह का है। पत्र आकार, प्रकार, रग-रूप, लिखावट, साज-सज्जा इन सबके मानको मे अलग अलग यानी कि भिन्न-भिन्न किस्म के हो सकते है। ऐसा नही है कि मै आपकी परेशानी को नही समझ रहा हूँ। इस समय जो कुछ इस बारे मे आप सोच रहे हे वही बात मेरे दिमाग मे भी है। यह एक सयोग मात्र हो सकता है, किन्तु यह सच है। क्या सयोग सच नही होता या सच सयोग नही होता। जो स्थिति पत्र के विषय मे है, वही स्थिति आमन्त्रण-पत्र के विषय मे है। आप ठीक समझ रहे है। मैं अपनी उलझन को भूला नही हूँ। बात मे से बात निकल गई तो यह सब आपको बताना पडा। वरना, वरना मेरे सामने तो मूल प्रश्न अब भी वही है। पत्र और आमन्त्रण-पत्र। छोटा और बडा, किन्तु अन्तर एकदम अपरिभाषनीय। बहुत ही सूक्ष्म। सुई की नोक से भी सूक्ष्म। ठहरिये महाशय, यदि आप इस तरह की बात सोचेगे तो इसमे आपका ही अहित होगा। मेरा इससे कुछ भी बनने-बिगडने वाला नही है। आप जहाँ आज है, न वो कल वही बैठे हुए थे न आने वाले कल मे आप [illegible] जितनी आप पर लागू होती है, उतनी ही मुझ पर भी लागू होती है और

इसीलिए कह रहा हूँ कि अब तक आप आज जिस स्थान पर हैं, वही बैठे बैठे कम से कम इस पत्र की कहानी तो सुन ही लीजिये, लेकिन मेरे साथ एक परेशानी और भी है। सही पूछ तो मुझे कहानी सुनाना भी नही आता। अब तक इतने सालो तक इस परिवेश मे बैठते, सोते, उठते, मैंने अनगिनत लोगो की कहानियाँ सुनी हैं, खूब मन लगाकर सुनी हैं चटखारे ले-लेकर सुनी हैं, रो-रोकर भी सुनी है। आधी-अधूरी भी सुनी है, तो पुनरावृत्तियो मे भी सुनी हैं किन्तु यह जरूरी तो नही कि अच्छा श्रोता अच्छा वक्ता भी बन जाय और इस पत्र की कहानी वास्तव मे आप सुनना चाहेगे तो इससे पहले आपको मेरी कहानी सुननी पडगी, और मेरी कहानी सुनने स पहले आपको और बहुत-सी कहानियाँ सुननी पडेगी। सुननी ही पडगी महाशय!

आप यह कतई न समझें कि मैं बात टालने की कोशिश कर रहा हूँ या कहानी नही सुनाना चाहता। दरअसल मेरी स्वय की तीव्र इच्छा है कि मैं आपको अपनी कहानी सुनाऊँ किन्तु केवल एक ही बात, जो मुझे परेशान कर रही है, वह शुरू करने की है। यह तो आप मान ही जायेंगे कि हर घटना का अत एक ही होता है। अन्तर है तो उसके प्रारम्भ मे। घटना को आप कहाँ से शुरू मानते है यही बात ज्यादा महत्त्व की है, वैसे ज्यादा उलझन की आवश्यकता भी नही है। जहाँ एक घटना शुरू होती है, वही उसी बिन्दु पर दूसरी घटना का अत हो चुका होता है। और भी खुलासा कहूँ तो हर प्रारम्भ किसी समापन का ही परिणाम होता है। इसे आप किसी भी चीज पर घटित कर लीजिये। यह सब बाते बताकर मैं आपको यह हरगिज नही बताना चाहता कि मैं कोई बहुत बडा दार्शनिक हूँ, न मैं कभी रहा हूँ। यह तो मेरी दुविधा ही है, कहानी शुरू करने की दुविधा मेरी

अपनी ही कहानी के शुरू करने की दुविधा। वरना तो मैं सीधा सपाट अपनी बात पर आ जाता।

पर मैं आज दृढ निश्चय करके ही बैठा हूँ कि आपको अपनी कहानी सुनाकर ही उठूँगा। आप सुनना चाहेंगे तो भी और न सुनना चाहेंगे तो भी। दुनिया के सारे काम स्वेच्छा से नहीं होते, बहुत से ऐसे भी काम है जो जबरदस्ती से भी हो जाते है। बहुत कुछ हम ऐसा कर गुजरते है, जो हमे कभी नही करना चाहिए। जब बात स्वेच्छा की एव जबरदस्ती की चली तो एक बात और बता दूँ। यह भी देखा जाये तो शब्दो का ही हेर-फेर है। जो बात किसी एक के लिए जबरदस्ती की हो सकती है, वही बात दूसरे के लिए स्वेच्छा की हो सकती है। मान लीजिए, मैं आपके गाल पर थप्पड जमाना चाहता हूँ, तो थप्पड खाना जबरदस्ती का काम, आपकी अनिच्छा का काम हो सकता है, किन्तु मेरे लिए तो यह एक स्वेच्छा-मात्र है। कहने का तात्पय यही हुआ कि दुनिया का ऐसा कोई काम शायद ही हो जो दोनो पक्षो की जबरदस्ती से सम्पन्न हो सके। बुरा हो इस शब्द-जजाल का, उससे भी अधिक बुरा हो, इस भाषा को चलाने वाले का। वरना आदिम युग का आदमी सकेतो से ही अपने आधे-अधूरे मनोभावो को अभिव्यजित कर देता था। न उसे भाषण की जरूरत थी, न माइक की, न कागज की, न कलम की। और ये कागज अक्षर न होते तो न तो यह पत्र, जिसे आप पत्र या आमन्त्रण-पत्र कुछ भी कह सकते है, मेरे हाथ मे होता, न मेरे पास सुनाने के लिए कोई कहानी होती, और न ही आपको इस तरह से मेरी कहानी सुनने के लिए इन्तजार करना पडता, साफ शब्दो मे कहूँ तो कुढना पडता।

खैर महाशय, ये सब बाते तो बाद मे भी होती रहेगी। इनकी इतनी जल्दी भी नही है। वैसे लगता है आप भी फुरसत

मे है और मै तो खैर हूँ ही । हर कहानी कहने वाला फुरसत मे होता है, तभी वह कहानी शुरू कर पाता है। कहानी का प्रारम्भ फुरसत के क्षणो का परिणाम होता है। विवेचना मुझे किसी भी वस्तु की नही करनी है । मरजी आपकी । जब तक जी चाहे सुनते चलें, जब ऊब जाएँ उठ कर जा सकते हैं। मेरे साथ ज्यादा ही शिष्टता दिखानी हो तो बीच-बीच मे अपना ध्यान इधर-उधर केंद्रित करना शुरू कर दें । किसी छोटी सी बात पर इतना जोर दे कि मैं सचमुच मे हड़बड़ा जाऊँ या आपकी मन स्थिति को सही-सही समझ सकूँ, लेकिन यह शाश्वत सत्य है कि कहानी शुरू होने के बाद न तो उसे कहने वाला बीच मे छोड़ना चाहता है, ना ही सुनने वाला बीच मे उठकर भागता है, बशर्ते कि वह कहानी हो। खैर, ऐसी कहानी सुनाने का तो मैं कतई दम नहीं भरता।

हाँ, जो कुछ आपको सुना रहा हूँ न वह अधखुली आँखो का भ्रम है, न गहरी नींद का सपना, न भावुक मन की कल्पना। यह एक हकीकत है, एक वास्तविकता है। वैसे देखा जाये तो रखा ही क्या है आज के जमाने की किसी भी कहानी मे। कहानी चाहे मेरी हो या आपकी अन्तर पात्रो के नामो का ही ज्यादा होता है। आन्तरिक भावनाएँ और सामाजिक परिस्थितियाँ, राम और श्याम, अब्दुल और रहमान, सभी की एक-सी ही लगती हैं। जिस प्रकार चाय की एक प्याली और एक अदद अखबार की कीमत देश के किसी भी हिस्से मे लगभग समान ही मिलती है, उसी प्रकार कहानी भी हर पात्र की एक सरीखी ही है। वैसे कहानी का क्या, कहानी कहीं से भी शुरू की जा सकती है।

रात के गहन सन्नाटे मे लगता है इस आश्रम मे हम दोनो ही जाग रहे है। बाकी लोग अपनी नींद सो रहे है। कितने भाग्यशाली होते हैं वे लोग जो ठीक समय पर गहरी नींद की गोद मे

मसाजाते है। जिस रात मुझे कभी भी ऐसी नींद आई है, सोकर उठने पर सुबह मुझे यही लगा जैसे मनु का एक मन्वन्तर पूर्ण हुआ है। एक नयी ही सृष्टि की रचना। शरीर कितना हल्का हो जाता है, एक रात की गहरी नींद से। लगता है विषयान्तर हो रहा है। मुझे बात कहाँ से शुरू करनी चाहिए, यही समझने मे थोडा झझट हो रहा है। इच्छा तो यह भी होती है कि इस प्रसग को यही समाप्त कर' सोने चला जाऊँ। स्वाभाविक है फिर आप तो सो ही जायेगे, किन्तु मैं पूर्ण आश्वस्त हूँ, मुझे नींद बिलकुल नही आयगी और कौतुहलवश आपको भी नींद शायद नही आये। अच्छा ही है बिस्तर पर चुपचाप जागते पडे रहने से आपको यह कहानी ही सुना दूँ। इसी पत्र की, आमन्त्रण पत्र की। किन्तु महाशय, इस पत्र की, आमन्त्रण पत्र की कहानी सुनने से पहले आपको थोडी-सी कहानी इस आश्रम की भी सुननी पडेगी। नही तो मै अपनी बात पूरी तरह से नही कह पाऊँगा।

और इस आश्रम की कहानी सुनने से पहले आपको बाबा बैजनाथ की कहानी भी अवश्य सुननी पडेगी। बिना उस कहानी के आश्रम की कहानी भी अधूरी ही रहेगी और जब आप बाबा बैजनाथ की कहानी नही सुन पायेगे तो इस आश्रम की कहानी भी नही सुन पायेंगे। आश्रम की कहानी नही सुन पायेगें तो मैं जो कहानी सुनाने जा रहा हूँ वह भी नही समझ पायेगे और ऐसी हालत मे यह पत्र, यह आपके लिए रहस्य ही बना रह जायेगा। मैं बाबा बैजनाथ की कहानी शुरू करने ही वाला हूँ, परन्तु मै यह भी सोच रहा हूँ कि बाबा बैजनाथ की कहानी सुनाने से पहले आपको एक कहानी और सुनाऊँ। बाबा बैजनाथ मुझे सर्वप्रथम कब और कहा मिले, यह बताना बहुत ही प्रासगिक है। सच-मानिये, यदि ऐसा नही होता तो मै आपको बाबा बैजनाथ की.

कहानी के पहले लौहागल की कहानी कभी भी नहीं सुनाता, आग्रह करने पर भी नहीं।

मैं आपको लौहार्गल की कहानी भी सुना ही देता, किन्तु एक बात और है महाशय मैं आपको साफ ही बता देना चाहता हूँ कि आप पहले ही व्यक्ति नहीं है, जो यह कहानी सुन रहे है। इससे पूर्व भी दो व्यक्ति यह कहानी मेरे मुँह से सुन चुके है। बिलकुल रात्रि के एकान्त मे, आज की ही तरह, आपकी तरह मे ही। पहले व्यक्ति थे बाबा बैजनाथ। दूसरा व्यक्ति है? ठहरिये महाशय, नाम बाद मे बता दूँगा। आपको इतनी उत्सुकता भी नहीं होगी। इतना तो आप जान ही चुके हैं कि आप तीसरे व्यक्ति है जो यह कहानी सुन रहे हैं, किन्तु एक अर्थ मे आप पहले व्यक्ति ही माने जा सकते हैं, इस पत्र की कहानी सुनने वाले व्यक्ति, नितान्त पहले व्यक्ति। बाकी कहानी सुनने वाले तीसरे व्यक्ति।

मुझे अच्छी तरह याद है एक शाम मैं भटकते-भटकते इस आश्रम के द्वार पर पहुँच गया था। बढी हुई खिचडी दाढी, असन्तुलित-सी मानसिकता, अनिश्चय की मन स्थिति, साथ मे कोई सामान नहीं। आज रात कही सिर छुपाने को जगह मिल जाये तो सुबह की चिन्ता सुबह होने पर। यही आशावादिता तथा भविष्य के ऐसे ही आधे-अधूरे सपने। कुल मिलाकर यही व्यक्तित्व था मेरा उस समय, जब मैं शाम के धुधलके मे उस आश्रम के अन्दर पहुँचा। अन्दर पहुँचकर यह बाहर जो चबूतरा देख रहे है न। वहीं ठिठककर रुक गया था मैं। पास बिछी बालू पर मेरे पाँवों के निशान उभर आये थे। न मैं स्वय को यहाँ पहुँचकर यायावर कह सकता था, न ही कोई भक्त। भटकाव ही मेरी मानसिकता थी, यही मेरी नियति। सपने देखना तो मैं एक तरह से छोड ही चुका था। सपनो मे जीना भी कोई जीना है।

सपने आदमी को कमजोर बना देते हैं, कभी कभी तोड भी देते है।

आदमी का जीवन चट्टान की तरह सरत होना चाहिए, बिलकुल चट्टान की तरह बालू की तरह लिजलिजा नही। बालू मे हम पैरो को रोप सकते है, शरीर को सौप सकते है, किन्तु जीजिविषा बालू को समर्पित नही हो सकती। इस आश्रम मे ये दोनो ही बाते मैंन उस क्षण देखी थी, बालू का लिजलिजापन और चट्टान की कठोरता। पास के सामने वाले नीम पर अगर चिड़ियाँ चहचहाना शुरू नही करती तो पता नही मेरी मन स्थिति कब तक ऐसी ही रहती। ठीक उसी समय जब विद्युत का प्रकाश पूरे आश्रम मे फैला, मेरी तन्द्रा भग हुई। बाबा बैजनाथ मुझ से दूसरी बार प्रश्न कर रहे थे, "आ गये बेटा।" और मैं चुपचाप उनकी तरफ देखे जा रहा था। कैसा अद्भुत तेज एव तप था उस पुनीत चेहरे पर। मैं स्तब्ध रह गया। मूर्तिवत् स्तब्ध। जब बाबा बैजनाथ ने मुझ से तीसरी बार कहा, "आओ बेटा अन्दर आ जाओ।" तो मेरी चेतना सही जगह लौटी। मैंने झुककर बाबा के चरण छुए और उनके पीछे-पीछे आश्रम के अन्दर चल दिया।

इस आश्रम के बारे मे आपको बहुत कुछ बताना है महाशय, आप जो कुछ यहाँ देख रहे है उससे भी बढकर बहुत कुछ और है यहाँ, जिसे आप नही देख पा रहे हैं। जिसे देखने के लिए आपको मन की आँखे भी खालनी पडेंगी और तन की आँखे भी खुली रखनी पडेगी। इस आश्रम मे इन्सान है, पशु-पक्षी है, पेड-पौधे है, आगतुक है स्थाई निवास करने वाले व्यक्ति भी है। यहाँ के कण-कण म आदमी के लिए प्यार बसा हुआ है। पत्ते-पत्ते मे क्षमा और दया उमड रहो है, लेकिन इस आश्रम

के बारे मे जानने से पूर्व आपको यह जान लेना बहुत जरूरी है कि मैंने बाबा बैजनाथ को पहले-पहल कहाँ देखा था तथा बाबा बैजनाथ मुझे आते ही अन्दर क्यो लिवा ले गये। यह सब कौतूहल शान्त करने के लिए आपको लोहागल की कहानी सुननी ही पडगी। सुननी ही पडगी महाशय ! यदि आप लोहागल की कहानी नही सुनेंगे, तो आश्रम की कहानी भी नही सुनेंगे, आश्रम की कहानी नही सुनेंगे तो मेरी भी कहानी नही सुनेंगे और मेरी कहानी नही सुनेंगे तो इस पत्र की कहानी भी नही सुनेंगे, जो अब भी मेरे हाथ मे है।

जिस दिन मैने बाबा बैजनाथ को सर्वप्रथम लोहार्गल मे मार्ग मे स्थित बिरला धर्मशाला मे देखा था, उस दिन भी संयोग से बरसात का ही मौसम था। रविवार का दिन था। दूसरे दिन सोमवती अमावस्या पडती थी। मैं जयपुर से सीधा बस पकडकर सीकर तक पहुँचा था। वहाँ से बस बदल कर रघुनाथगढ फिर लोहागल की इस बिरला धर्मशाला मे। कुछ ही देर पहले अच्छी बरसात हो चुकी थी, पहाडी नदी गर्म दूध की तरह उफन रही थी। मैं बहती पहाडी नदी मे चलने का तनिक भी अभ्यस्त नही था, इसलिए इतना-सा रास्ता तय करने मे भी मुझे बडी कठिनाई हो रही थी। शायद मैं रास्ते मे कही ऊँचे-नीचे पत्थरो से टकराकर गिर ही पडता, यदि मुझे आगे-पीछे चलने वाले दो युवको ने न संभाल लिया होता। मेरी बढी हुई दाढी तथा अस्त-व्यस्त कपडे देखकर उन्होने मुझे महान विचारक या प्रगतिशील विचारो का लाचार व्यक्ति समझ लिया होगा, तभी वे दोनो युवक बिना बुलाये ही मेरे काफी नजदीक आ गये थे। उनमे से एक युवक ने चन्द्रशेखरी दाढी रख छोडी थी, दूसरा अपेक्षाकृत कुछ स्थूलकाय एव लम्बा था। दोनो ही युवक आकर्षक थे। वेश भूषा से सैलानी नजर आ रहे थे।

मेरा इस यात्रा का पहला पहला अनुभव था। सकोच भी कर रहा था, सूर्य-अस्त हो रहा है, आकाश मे बूँदा-बांदी भी

चालू है। रात्रि को विश्राम कहाँ उचित रहेगा ? रास्ता पथरीला है प्रकाश व रोशनी की भी व्यवस्था नही है। पहाडी रास्ता उबड खाबड। यो सोचते-सोचते ही हम तीनो बिरला धर्मशाला के मुख्य द्वार तक पहुँच गए। पूरे रास्ते न तो उन युवको ने मुझ से कोई परिचय पूछा एव न ही मैंने उन दोना युवको का परिचय जानने की आवश्यकता समझी। ज्यो ही मैं धर्मशाला के अन्दर पहुँचा, बरसात अचानक तेज हो गई। काले बादलो ने पूरे पहाड को ढक लिया। देखते ही देखते अन्धकार का घटाटोप आसमान पर छा गया। धर्मशाला के बराबर एक कोने मे कुआ बना हुआ है। वही बाबा बैजनाथ मुझे बैठे हुए दिखाई दिये। तेज बरसात होने से बाबा धर्मशाला के बरामदे की तरफ बढ आये। ज्यो ही बाबा मेरे नजदीक पहुँचे पता नही क्यो अचानक मुझे उस व्यक्ति के प्रति स्वाभाविक श्रद्धा उत्पन्न हो आई। मैंने लपक कर बाबा का चरण स्पर्श किया।

बाबा आहिस्ता-आहिस्ता धर्मशाला की प्रथम मन्जिल पर बने बरामदे की तरफ बढ चले। मैं भी मन्त्रवत् बाबा के पीछे-पीछे चल पडा। इस धर्मशाला का ऊपर का रास्ता भी बडा विचित्र है। नया आदमी इसे काफी तलाश करने पर ही ढूँढने मे सफल हो सकता है। धर्मशाला के एकदम पीछे, बिलकुल एक कोने मे वहाँ भी दूर से आपको सीढियाँ नजर नही आयेगी। जब आप एकदम नजदीक पहुँचेंगे तो मकान मे से सीढियाँ ऊपर जाती दिखाई पडेगी, किन्तु मै बाबा के पीछे-पीछे चल रहा था, इसलिए कोई असुविधा नही हुई। ऊपर बरामदे मे पहुँचकर बाबा एक बडे तख्त पर बैठ गये। तख्त पर एक पुरानी मृगछाल थी। वही बाबा का आसन था। वहाँ पहुँचकर मैंने यह महसूस किया कि बाबा अकेले ही नही है, उनके साथ उनका शिष्य परिवार भी है। बाबा के आसन पर बैठते ही एक शिष्य ने बाबा का सूखा तौलिया पकडाया, दूसरे ने गाँजा की भरी हुई चिलम बाबा की तरफ बढाई। चिलम की दो फूक लेते ही बाबा की

आँखो मे ललाई तैरने लगी। गांजा के नशे की ललाई। इस बीच बरामदा के एक कोने मे खडा मैं बाबा के क्रियाकलापो को देख रहा था। कुछ शिष्य बरामदे मे एक तरफ भोजन-व्यवस्था मे जुटे हुए थे। जब बाबा के सामने स्टील के गिलास मे चाय आई तो बाबा ने मेरी तरफ इशारा किया। चाय का एक कप एक शिष्य मेरे भी हाथ मे थमा गया। मुझ से न हाँ कही गई, न ना।

जब सब लोगो ने चाय पीनी शुरू कर दी तो मैंने भी शुरु कर दी। बाबा जब चाय पी चुके तो दूसरी चिलम चढाने लगे। इस बीच मैं भी बरामदे मे बिछी दरी पर आश्वस्त होकर एक तरफ बैठ चुका था। बाबा ने मुझ से पहला प्रश्न यही किया, "कहाँ स आ रहे हो बेटे ?" और मैंने सिर नीचा कर जवाब फेंक दिया 'जयपुर से।" उसके काफी देर बाद मुझसे बाबा की कोई बातचीत नही हुई। सब अपने अपने काम मे लगे हुए थे। बाबा बाहर होती बरसात को एकटक देख रहे थे। तब तक उनकी आँखो मे चिलम के नशे की ललाई बढ चुकी थी। मैं एकदम बाबा के चेहरे की तरफ देख रहा था। पास मे एक गैस लालटेन एक शिष्य ने जला दी थी। गहन चुप्पी तब टूटी जब बाबा ने मुझे आदेश दिया, "रात्रि भोजन हमारे साथ ही करोगे।" मैं सकोच से गडा जा रहा था। न जान न पहचान न भेंट, न पूजा। यह बाबा मरी इतनी खातिर क्यो कर रहे हैं।

शिष्य जो भोजन बना रहा है वह कुछ कुढ रहा होगा, यह असमय का मेहमान कहाँ से आ टपका। फिर सोचने लगा, शायद यह इन लोगो के नित्य का काय होगा। कोई न कोई तो बाबाओ के पास अजनबी आता ही होगा। चाय के समय आने से उसे ये लोग चाय भी पिलाते होगे भोजन का समय होने पर भोजन भी खिलाते होगे। खैर कुछ भी हो अब मै पूणतया

आश्वस्त हो चुका था कि रात यहाँ, इसी दरी पर बाबा के चरणो मे बहुत आराम से कट जायेगी। जब चाय पिलाई है, भोजन खिलायेंगे तो उसके बाद तो किसी आगन्तुक को धक्का मारकर आश्रम-स्थल से निकाल देना, साधु-स्वभाव के विपरीत ही होगा।

गेरुआ वस्त्र बाबा का एक मात्र परिधान था। सिर पर भी एक गेरुआ कपड़ा ही लपेट रखा था। पाँवों मे पहनने के लिए काष्ठ की पादुकाएँ, जो इस समय तख्त के नीचे रखी हुई थी, यद्यपि मैं इस तरह के वातावरण मे पहली बार ही प्रविष्ट हुआ था। इसका अर्थ यह नही है कि मैंने इसके पहले किसी साधु महात्मा के दर्शन ही नही किये हो, किन्तु उन दर्शनो मे और आज के दर्शनो मे काफी अन्तर था। पहले जब भी किसी साधु स्थान पर गया हूँ तो दर्शन किया, पाँव छुए और वापस अपने मुकाम की ओर, किन्तु आज तो इसी मुकाम पर रात काटनी है और अगर रात काटने तक की ही बातचीत होती तो सच मानिये, मैं यह कहानी आपको हरगिज नही सुनाता। आपके आग्रह करने पर भी नही, क्योंकि उस समय उस कहानी मे रखा ही क्या होता, जो मै आपको सुनाता।

किसी साधु महात्मा के चरणो मे रात काट देना ऐसी कोई अनोखी घटना नही होती, जिसकी कहानी इस तरह किसी को सुनाई जाती। रात कितनी डूब चुकी है। जगल के गीदड भी बोल बोल कर थक गये है। लगता है महाशय, इस पूरे परिवेश मे आप और मैं केवल दो व्यक्ति ही जाग रहे है। बाहर बरसात भी काफी तेज हो गई है। रह-रह कर आसमान मे बिजली कौंध कर, किसी भटके हुए यात्री को रास्ता दिखा रही है। भौतिक बिजली इस बीच तीन बार आँख-मिचौली कर चुकी है। जब भी अचानक बिजली गुल होती है, बड़ा अच्छा लगता है, मन को

एक शान्ति-सी मिलती है। पूरे वातावरण मे अधेरा। घुप्प अधेरा और यह अधेरा कई बार मन के गहरे मे गहरे दरवाजो पर एक प्रकाश फैला देता है। जब हम वाह्यचक्षु बन्द कर लेते है तो तत्क्षण, ठीक उसी क्षण हमारे अन्तचक्षु खुल जाते हैं। अन्दर ही अन्दर हमे आन्तरिक प्रकाश मे सरावोर कर देते हैं। हजार हजार वाट के बल्बो की रोशनी मे कही ज्यादा रोशनी हमारे अन्दर जगमगा उठती है। सारा आश्रम सो रहा है, महाशय सारा आश्रम।

ऐसे ही एक दिन बाबा के चरणो मे उस विरला-धर्मशाला मे मैं भी सोया था, किन्तु बाबा बैजनाथ की यह कहानी अधूरी ही रहेगी, यदि आप मुक्तिनाथ की कहानी नही सुनेंगे। यदि आप मुक्तिनाथ की कहानी सुन लेंगे तो आपको बाबा बैजनाथ की कहानी भी समझ मे आ जायेगी। इस आश्रम की कहानी भी समझ मे आ जायेगी। इस आश्रम की कहानी समझ मे आ जायेगी तो आपके लिए मात्र इस पत्र के विषय मे ही जानना शेष रह जायेगा जो इस समय भी मेरे हाथ मे है। आज की इस कहानी का सूत्रधार यह पत्र ही तो है। यदि यह पत्र आज मेरे पास न पहुँचता तो मैं फिर इसकी कहानी आपको हरगिज नही सुनाता। कभी नही सुनाता। फिर कहानी सुनाने से कोई लाभ भी तो नही था और जब पत्र की कहानी नही सुनाता तो वाकी कहानी सुनाने का कोई प्रयोजन भी नही था।

विरला धमशाला के ऊपर की मजिल के बरामदे मे दरी पर रात-भर करवटें बदलता रहा, फिर भी मुझे नीद नही आई। कुछ नयी जगह होने की वजह से, कुछ कौतूहलवश। सुबह लौहागल के सूर्यकुण्ड मे जाकर स्नान करना है यह बात तो बाबा के शिष्यों से मालम हो गई थी और सुबह स्नान करने

का अर्थ था, गहरे तडके ही उठकर चल देना, लेकिन उसके बाद क्या होगा, कहा जाना है, मन कही भी स्थिर नही हो रहा था। रात-भर छटपटाता रहा, करवट पर करवट बदलता रहा। कई बार सोचा उठकर चुपचाप चल दूँ, किन्तु इससे तो बुरा ही लगेगा। कम से कम बाबा की अनुमति तो लेकर जाना ही चाहिए अन्यथा बाबा मन मे क्या सोचेगे। रात को भोजन खिलाया। सोने के लिए ठौर-ठाँव बताया, सुबह देखा तो नदारद। मन नही माना, इसी पशोपेश मे मै उठकर बैठ गया। बाहर बरसात तो रुक चुकी थी, किन्तु छत गीली थी। मैंने चप्पले डाली और बरामदा के बाहर आकर खडा हो गया। मन्द मन्द ताजा बरसाती हवा के झोके ने मेरा भरपूर स्वागत किया। तबियत प्रसन्न हो गई।

मैं चुपचाप सामने बहती पहाडी नदी को देखता रहा। कलकल की बहते पानी की आवाज, मेढको की टर्र टर्र की कर्णप्रिय ध्वनि। मन को बहुत ही शाति मिली, इस पूरे परिवेश से। मैं चुपचाप नीचे उतर कर धमशाला के दरवाजे से बाहर आकर सामने बहती पहाडी नदी के एकदम समीप आ गया। नदी के बहते पानी की ध्वनि और भी नजदीक आ गई। रात-भर तेज बरसात होती रही थी, इसलिए बरसात बन्द होने के बाद भी नदी का बहाव पूरे जोश के साथ जारी था। मैंने बहते पानी मे हाथ बटाया तो एक धक्का सा लगा। यदि मैं स्वय को तत्काल सम्भाल नही लेता तो पानी का बहाव मेरे शिला पर जमे हुए पाँव ही उखाड देता। असमन्जस की स्थिति मे था। पीछे मुडकर देखा तो बाबा के आश्रम-स्थल मे चहल पहल शुरू हो गयी थी। शिष्य लोग उठ चुके थे। बाबा सोये-सोये रामधुन मे तल्लीन हो रहे थे।

मैं चुपके चुपके वापस बाबा के पास ही दबे पाँव लौट आया। बाबा ने मुझे देखते ही कहा, "कहाँ गये थे, पहाड़ी जगह पर इस तरह अँधेरे में नही जाना चाहिए। यहाँ बरसात के मौसम मे साँप बिच्छुओं का बड़ा जोर रहता है। यहाँ घास के रग के सर्प बहुत निकलते हैं जो रात मे तो क्या दिन मे भी दिखाई नही पड़ते।" मैंने बाबा की बात का कोई उत्तर नही दिया। चुपचाप सुनकर दरी पर एक किनारे बैठ गया। यह बाबा बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक है शायद मेरी मन की बात को समझ चुका है और मैं अचानक सकुचित-सा हो गया।

जिस प्रकार देह निवस्त्र होने पर सकोच होता है, उससे भी ज्यादा सकोच आदमी को उस समय होता है जब अन्दर के किसी रहस्य की पत का पर्दा सामने वाला अपनी पारदर्शी दृष्टि से ही हटा दे। निवस्त्र व्यक्ति हथेलियो से चेहरा ढककर अपनी लाज को छुपाने का असफल प्रयत्न तो कर सकता है किन्तु मन को निर्वस्त्र होता देखकर ऐसा कोई यत्न भी बचने का इजाद नही हुआ है इसीलिए मुझे मनोवैज्ञानिकों से बड़ा भय लगता है और यह बात मेरे दिमाग मे उसी वक्त जम गई थी कि बाबा बहुत बड़े मनोवज्ञानिक हैं और इस बात की पुष्टि तो बहुत बाद मे जाकर हुई कि बाबा किताबी मनोवैज्ञानिक ही नही है, अपितु व्यावहारिक मनोवैज्ञानिक है, जो समस्या को अ तर्चक्षु से देखते भी हैं और उसका समाधान भी यथासम्भव करते हैं।

हम लोग सूर्योदय के साथ लोहागल पहुँच चुके थे। कितना सुन्दर गाँव है, मन्दिरो का गाव। आमो की धरती जहाँ देखो, वहाँ बड़े-बड़े हरे भरे आमो के पेड। कोयल की मीठी आवाज। सुबह की, अलस्सुबह की देहाती चहल पहल। उनीदी आँखो मे नींद की खुमारी। जवान जिस्मो की जवान आँखो मे जवान रात की सुहानी यादें, आने वाली रात के जवान सपने। प्रकृति

कभी बूढ़ी नहीं होती। पहाड़ी लोग स्वास्थ्य में मैदानी लोगों से हमेशा ही बाजी मारते है चाहे वह मर्द हो या औरत। एक घर के सामने एक औरत चूल्हा सुलगा रही थी। लकड़ियां गीली थी इसलिए धुँआ उसकी आँखों से छेड़छाड़ कर रहा था। आप जानते ही है महाशय जब कोई आवारा व्यक्ति किसी औरत से छेड़छाड़ करता है तो उसकी आँखें गुस्से से लाल हो जाती हैं। वैसे ही लगा इस औरत का सारा गुस्सा आँखों के जरिये इन गीली लकड़ियों पर उतर रहा था।

आप क्या सोच रहे है महाशय, मैं इस आश्रम मे बैठा हुआ कहानी सुनाते सुनाते कहाँ से आपको उस औरत की कहानी सुनाने लग गया। क्या यह सब बाते शोभा देती है। फिर मेरे व आपके बीच कभी ऐसी स्थिति आई ही नही कि मैं ऐसे विषयों पर आप से बातचीत करता, किन्तु उस समय न तो मै ही वह था जो आज हूँ। न मुझे यह सब बताने मे संकोच हो हो रहा है कि मैं जवान व्यक्ति था और हर जवान व्यक्ति जवानी की यादें सहेज कर, बहुत सहेजकर अपने मन मे इकट्ठी रखता है। वे बाते ही है जो वार्धक्य मे व्यक्ति के जीने का सहारा बनती है, जिस व्यक्ति के पास इन सब बातों का जितना ही कम भण्डार होता है, उसका वार्धक्य उतना ही घोर होता है। आदमी के वर्तमान का महल उसके भविष्य के सपनों एवं भूत की मधुर यादों की मजबूत नींव पर ही खड़ा रहता है। बड़े बड़े भूचाल और आँधी के थपेड़े उस महल को जरा भी नही डिगा पाते है।

आपको उत्सुकता हो सकती है महाशय, लेकिन उस औरत के बारे मे ज्यादा बताना अपेक्षित नही है, न ही आवश्यक। बस इतना ही जान लेना काफी है कि उस दुकान पर बैठकर हम लोगों ने चायपान किया, फिर उठकर सूर्यकुण्ड की ओर चल

दिये। बाबा सबसे आगे थे। उनके पीछे पीछ उनके चारो शिष्य, उन सबसे पीछ मैं। यह दृश्य देखकर मुझे बचपन की पढ़ी हुई एक पौराणिक कहानी की याद आ गई। धमराज युधिष्ठिर सबसे आग चल रहे थ उनके पीछ भीम, भीम के पीछे अर्जुन अर्जुन के पीछ नकुल और नकुल के पीछ सहदेव और उन पाचो क पीछ धमराज युधिष्ठिर का कुत्ता। धमराज युधिष्ठिर का कुत्ता बडा स्वामी-भक्त और समझदार था। मेरे बारे मे तो मैं यह भी दम नही भर सकता था और आदमी जब स्वय को कुत्त से भी बदतर हालत म प्रतिष्ठित कर सोचने लगे तो उस व्यक्ति की मानसिकता सहज ही समझी जा सकती है।

सूयकुण्ड मे स्नान करने के बाद हमारी यात्रा का एक भाग पूरा हो गया। बाकी लोगो के मन मे अपने पिछले मुकाम पर लौटने की शीघ्रता थी और मुझे कही जाना नही था। मैं अपने पिछले मुकाम को, जहाँ छोडकर आया था, उस तरफ जाने वाले सारे रास्ते बन्द हो चुके थे। वे सब वापस लौटने के लिए मजबूर थे मैं जहा से आया था वहाँ वापस नही लौटने के लिए मजबूर था। मै कहा से आया यह तो पहले ही बता चुका हूँ। जयपुर से सीकर होकर सीधा लोहागल आया था, लेकिन जयपुर कहा से आया था, यह बाद मे बताऊँगा। जयपुर से चलकर यहाँ आने तक की कहानी सुनाने से पहले आपको मुक्तिनाथ की कहानी सुननी पडगी। उसके बाद आश्रम की कहानी सुननी पडगी नही तो कहानी का सारा ढाचा ही गडबडा जायेगा महाशय। इसीलिए आपसे कह रहा हूँ। पहले जयपुर से चलकर यहा आने वाली कहानी को छोडिए, इसके पूव मुक्तिनाथ की कहानी ज्यादा ठीक रहेगी। नही तो इस पत्र के विषय मे आप कुछ भी नही जान पायेंगे, कुछ भी नही और आप देख ही रहे है यह पत्र अब भी मेरे हाथ म पडा हुआ है।

बाबा वैजनाथ महान् मनोवैज्ञानिक थे। इस बात की पुष्टि बहुत बाद मे हो गई थी, लेकिन कुछ-कुछ आभास उसी समय हो गया था। जब सब लोग चलने लगे तो मैं उनकी वापसी को देखता रहा। बाबा ने पीछे मुडकर देखा तो मैं वही कुण्ड के किनारे खडा सूय-मन्दिर की ओर देख रहा था। अचानक मेरे पाँव ठिठक गये। बाबा ने एक शिष्य को इशारा किया। शिष्य मुझे बुलाकर बाबा के पास ले गया। बाबा ने मुझ से प्रश्न किया, "क्या वापस नही चलना है?" वही हुआ जिसकी मुझे बहुत पहले से ही आशका थी। मैंने हाथ जोडकर बाबा से निवेदन किया 'पूज्यवर, आपका और मेरा क्या साथ हो सकता है? मैं अपने पीछे जो मुकाम छोडकर आया हूँ। वहाँ तक पहुँचाने वाला कोई रास्ता खुला नही रहा है। मैं लौटकर उस मुकाम जाना भी नही चाहता। मुझे क्षमा करें पूज्यवर।" बाबा मन्द-मन्द मुस्कराये और बोले, "न जाता होगा कोई रास्ता तुम्हारे छूटे हुए मुकाम पर। मेरा आश्रम तो तुम्हारा नया मुकाम हो सकता है। दुनिया मे जीने वाले प्राणी, ईश्वर की अनन्त यात्रा के यात्री है, मैं भी इस यात्रा का यात्री हूँ। तुम और कुछ बनो या न बनो, उस यात्रा के सह-यात्री तो बन ही सकते हो। मेरा आश्रम मुसीबत मे तुम्हारे लिए हर वक्त खुला मिलेगा।"

बाबा और उसके चारो शिष्य कब लौट गये मुझे पता ही नही चला। मैं जैसे एक दिवा स्वप्न मे खो गया था। जब स्वप्न मे मेरी आँखें खुली, तो मैंने देखा कि शाम हो चली है और मैं उसी चाय वाली दुकान पर बैठा-बैठा प्याली मे चाय पी रहा हूँ। पथिक के लिए सूर्यास्त का समय सबसे निराशा का होता है, यदि कोई मुकाम से दूर ही रह जाय और आप जानते है मेरा मुकाम अज्ञात था। पीछे लौट नही सकता था। आगे का

कोई ठौर-ठिकाना नही था। अचानक बहुत तेज बरसात शुरू
हो गयी। बादलो से सारा पवत ढक गया। समय से पूव अन्धेरा,
जब बरसात रुकी तो रात के ग्यारह बज चुके थे, अब तो और
भी असमजस की स्थिति थी। इतनी रात गये इस बरसात मे
अधकार मे, कहाँ जाऊँगा? रास्ते मे बहती नदी तेज बहाव पर
है। घास के रग के साँप, मेरा कलेजा काप उठा।

मुझे ठीक कुछ भी याद नही है, कुछ भी याद नही है
महाशय कि मैं उस रात कहाँ सोया? सात रोज तक कहाँ कहाँ
भटकता रहा किन-किन से मिला, उस दुकान पर उस औरत
के हाथ की कितनी चाय पीयी, कुछ भी तो याद नही है। केवल
इतना याद है कि उस घटना के ठीक सात दिन बाद वैसी ही
एक अधेरी शाम को मैं खोजते-खोजते बाबा बैजनाथ के आश्रम
मे पहुँच गया था। आश्रम के द्वार पर बाहर आकर खडा हो
गया था। चिडिया चहचहा रही थी। बाबा बैजनाथ की तीसरी
आवाज पर मैं चौका था। बाबा के साथ उनके पीछे-पीछे
आश्रम के अन्दर की ओर बढ चला था। इतना सब कुछ आपको
बताने का भी एक प्रयोजन था महाशय, वरना मैं आपका समय
बिलकुल बरबाद नही करता, लेकिन मैं यदि लोहागल के बारे
मे नही बताऊँ तो आप बाबा बैजनाथ के बारे मे कुछ भी नही
जान पायेंगे। बाबा बैजनाथ के बारे मे कुछ भी नही जान पायेंगे
तो निश्चित है कि आप मुक्तिनाथ के बारे मे भी नही जान पायेंगे।
मुक्तिनाथ के बारे मे नही जानेंगे तो इस आश्रम के बारे मे भी
नही जानेंगे और इस आश्रम के बारे मे नही जानेंगे तो इस पत्र
के बारे मे भी नही जानेंगे, जो अब भी मेर हाथ मे पडा हुआ है।

मेरे आश्रम मे आने के बाद भी सब कुछ पूर्ववत चलता
रहा। पहले की तरह ही शिष्य सबसे पहले उठते, पूरे आश्रम की
सफाई करते, मिट्टी को छानते, पुरानी मिट्टी हटाकर नयी बालू

बिछाते। बाबा की रामधुन जारी रहती। गायों को दुहा जाता उन्हें साफ-सुथरे स्थान पर बाधा जाता। मन्दिर में आरती होती। ये सारे काय सुबह ही निवटा दिये जाते। सुबह होते ही बाबा कन्धे में झोली डालकर भिक्षा माँगने निकल पड़ते। कैसा अजीब नियम था। जिस आश्रम में दिन में सैंकडो व्यक्ति भोजन करते उस आश्रम का मठाधीश सुबह सुबह स्वय भिक्षावृत्ति करता, लेकिन जब बाबा वापस आश्रम में लौटते तो इतना माँगने के बाद भी बाबा खाली झोली ही लेकर लौटते। भिक्षावृत्ति में वे केवल दो ही चीजें स्वीकार करते थे, रात की बासी रोटियाँ एव आटा। जितनी रोटियाँ मिलती सारी की सारी घर के बाहर निकलते ही कुत्तो में बाँट देते। जितना आटा मिलता वह चीटी, चीडियो और गायों को डाल देते। प्रभातफेरी का ऐसा ही नियम था जिस दिन बाबा किसी कारणवश या बाहर रहने से प्रभातफेरी में नहीं आ पाते, उस दिन शिष्यो में से कोई एक प्रभातफेरी पर जाता था।

गाँव के बाहर एक ऊँचे टीले पर बना था बाबा बैजनाथ का यह आश्रम। जहाँ से मैं यह आपको सुना रहा हूँ यह वही आश्रम है महाशय, पता नही आश्रम को किसने बनाया था? लेकिन बातो-बातो मे मुझे बाबा से यह अवश्य पता चल गया था कि इस आश्रम की गुरु-व्यवस्था काफी पुरानी है। जितनी कहानी इस आश्रम की मुझे कभी बाबा ने बताई थी, वह मैं आपको जरूर बताऊँगा। बाबा ने सबसे पहले बताया था। यह आश्रम केवल आश्रमवासियों का है, किसी सम्प्रदाय विशेष का नहीं। आप जानते है महाशय, हमारे इस प्रदेश मे अधिकाश आश्रम किसी न किसी सम्प्रदाय से जुड़े हुए है। बड़ी प्रगाढ जडें है, इन आश्रमो की हमारे समाज मे, लेकिन बाबा कहते थे मैं धमगुरु

होने का दम नही भरता, न ही मैं धर्मगुरु हूँ और बाबा को मैंने कभी भी न धर्मगुरु बनते देखा, न धर्मोपदेश देते। बाबा का एक धर्म था, मानव धम और वे मनुष्यता के गुरु थे। इस आश्रम के इतिहास को आपके लिए जानना वैसे तो आवश्यक नही है किन्तु जब आप बाबा बैजनाथ के बारे मे जान चुके हैं, तो आपको मुक्तिनाथ के बारे मे भी बताना ही पड़ेगा और मुक्तिनाथ को जानने के पहले इस आश्रम के इतिहास को भी जानना ही पड़गा। अगर आप यह सब न जान पायेगे तो इस पत्र के विषय मे भी आप कुछ नही जान पायग कुछ भी नही और यह पत्र ही तो सूत्रधार है इस पूरी कहानी का, महाशय। और जब आप इतना सुन ही चुके हैं तो थोटा-सा और सुन लीजिए, ताकि इस पत्र के बारे मे भी आपको सब कुछ मालूम हा जाय, सब कुछ।

बाबा ने एक दिन बातो ही बातो मे मुझ से कहा था कि यह आश्रम सदिया पुराना है। इस आश्रम के पार्श्व मे जो गाँव बसा है, उससे भी पुराना है। यह सब बातें बाबा को उनके गुरु ने बताई थी। बाबा के गुरु को उनके गुरु ने बताई होगी, गुरु के गुरु को उनके गुरु ने बताई होगी और यह कहानी इस आश्रम की कहानी, आज आप तक पहुँच रही है। शताब्दियो पूर्व तपोनिष्ठ और सयमी साधु थ, जो न किसी घर मे मागने जाते न लोग-बागो से ज्यादा सम्पक ही रखते। यह गाँव जो मौजूदा स्थिति मे आप देख रहे है न महाशय, इस गाँव के बसने की भी एक कहानी है जो बहुत पुरानी है, किन्तु इस गाँव के बसने की कहानी से भी ज्यादा पुरानी इस आश्रम के आदि बाबा की कहानी है, जिनका वणन मैं अभी-अभी आपके सामने

कर चुका हूँ। आदि बाबा सात्विक प्रकृति के व्यक्ति थे। केवल दूध का आहार लेते थे। उन्होने अपनी यौवनावस्था से ही अन्न का परित्याग कर दिया था।। दूध भी केवल गाय का दूध। इस जगह यह ऊँचे टेकरे पर जहाँ यह आश्रम आप देख रहे हैं देख रहे है क्या ? जहाँ हम लोग बैठे हुए है, कमरा बना हुआ है, खूबसूरत कमरा, सीमेंट और मकराना के पत्थर-जडा कमरा। बिजली है, ट्यूबलाइट हे पानी का नल है पम्पिग सैट है, अनाज के भण्डार है। ऐसा कुछ भी नही था उस आदि-बाबा के जमाने मे। केवल मिट्टी थी, टकरे की मिट्टी।

कहते है यह टेकरा बहुत ज्यादा ऊँचा था जो कालान्तर मे कालचक्र की हवाओ के थपेडे खाता-खाता टूटकर आधा ही रह गया है अब। बहुत तेज हवाएँ चलती थी, इस आश्रम के आस-पास। आंधी, बरसात और धूप से बचाव के लिए आदि-बाबा ने एक झोपडी बना रखी थी। वही उसकी तपोभूमि थी, वही रसोई-घर, वही भण्डार-घर, वही अतिथि-शाला और वही यज्ञ शाला। वैसे रसोईघर के रूप मे तो बाबा करते ही क्या थे, केवल गायो का दूध वह भी बिना उबला हुआ। गायो को ग्वार का बाँट देते थे और वह झोपडी रसोई-घर के रूप मे तभी काम मे आती थी। वही आदि बाबा का आवास था। आदि बाबा आठ दस गायें रखते थे। उनके अलग-अलग नाम थे। जितने दूध की आदि-बाबा को आवश्यकता होती, वह दुह लेते, बाकी सारा बछडो के लिए छोड देते थे।

आदि-बाबा बछडों को और गायो को देखकर बहुत खुश रहते थ और गाएँ और बछड आदि-बाबा को देखकर बहुत खुश रहते थ। हर गाय और बछड़े का अलग-अलग नाम निकाल रखा था तथा अपने नाम से वे पशु बहुत समझते थे। जिस नाम को गाय

9512

या वछडे को आदि वावा पुकारते, क्या मजाल कि आदि बाबा के सामने वह रभाता हुआ न चला आये। उन गायो एव वछडो के चरने के लिए इस आश्रम के आस पास की सैकडो बीघा जमीन खाली पडी थी। न इतनी जनसख्या थी न जमीनो की कमी। उस समय यह गाँव बसा ही नही था। इस गाँव मे घुसते ही पश्चिम मे जो एक चबूतरे पर हनुमान जी की प्रतिमा देख रहे हो न, उसकी स्थापना इस आश्रम के पहले से ही थी। किसने स्थापना की, कब की, ठीक-ठीक कुछ भी नही कहा जा सकता।

कहते है आदि-वावा प्रतिदिन सुवह-शाम उस वीर हनुमान की पूजा करने जाते थ। वस गाँव के नाम पर वही एक चबूतरा। सुबह-शाम के इस पूजा क अलावा आदि-बाबा अपनी झोपडी मे वठ तपस्या करते थ। न उनके पास कोई बिना कारण आता न वे किसी के पास जाते। आस-पास के गावो से कभी-कभी दो-चार लोग इधर-उधर आते-जाते आदि-बाबा के आश्रम मे आते, दशन करते, भेंट चढाते और अपना गन्तव्य पकड लेते। आदि-बाबा कभी आस-पास के लोगो के बहुत ही आग्रह पर, जब गावो मे पशुओ एव मनुष्यो मे महामारी फैल जाती, तो उसके इलाज के लिए चले जाते थ। इलाज आज की तरह का नही था। न दवा न सुई। वस रात-भर भजन-जागरण होता रहता। सारा गाँव इकट्ठा हो जाता। सुबह आदि-बाबा मन्त्र शक्ति मे तैयार किये गये शुद्ध जल की परिक्रमा उस गाँव के चारो ओर लगा देते, पूरा का पूरा गाँव सुरक्षित।

मृत्यु को अब तक न कोई रोक सका है, न कोई तब रोक पाया था। उन्नत से उन्नत वज्ञानिक साधन भी मृत्यु के आगे आज भी घुटने टेके हुए हैं। उस समय मन्त्रो की भी यही स्थिति थी। पर कहते हैं मन्त्रोपचार से आत्मबल बहुत बढता था,

यज्ञ हवन इनसे पर्यावरण परिष्कृत होता था और बीमारियाँ कम से कम होती थी। राजाओ के राज थे, सामन्ती जमाना था। आवागमन के सीमित साधन थे। या तो साधु-महात्मा का स्थान किसी के पकड मे ही नही आता और यदि कोई भूला भटका शासक या शासकाधीन व्यक्ति वहाँ पहुँच जाता तो वह राजप्रासाद की भेजी हुई भेंट आश्रम को भेंट करता, सन्तो का आशीर्वाद लेता और अपना अगला मुकाम पकडता। न तो उस जमाने के साधु-महात्मा राजप्रासादो का आतिथ्य ग्रहण करते, न राजाओ की इतनी हिम्मत ही पडती कि वे उनको इस बात के लिए निमन्त्रित कर सकें।

समय-चक्र चलता ही रहता है महाशय, यह किसी के रोके नही रुकता। न आज रुकता है, न उस समय रुकता था। एक दिन आया जब इस पार्थिव शरीर के सामने काल विजयी हो गया। आदि-बाबा का पार्थिव शरीर नही रहा, रह गई उनकी भक्ति, तपस्या, आराधना और कीर्ति। आश्रम और राजगद्दी कभी सूने नही रहते। उनके उत्तराधिकारी की खोज मठाधीश या राजा के पार्थिव शरीर अन्तिम संस्कार करने के पूर्व ही हो जाती है। *सांसारिकता का यही नियम है,* एक मात्र नियम और यह आश्रम भी इस नियम का आज तक अपवाद नही रहा।

आदि-बाबा नही रहे। पर यह आश्रम रहा, उनका यशो-नाम रहा। उनके शिष्य ने आश्रम की बागडोर सम्भाली। फिर यह शिष्य-परम्परा कायम हो गई जो आज तक चली आ रही है। आश्रम के पास ही यह गाँव बसा। शुरू मे एक-दो घर बसे, दस-बीस हुए। आज देख रहे हो, कितना बडा गाँव हो गया है यह। यहाँ बिजली, पानी, सडक, बस-यातायात सारी सुविधाएँ

उपलब्ध है। घरो मे रगीन टेलीविजन लग चुके है। रेडियो तो खेत-खेत मे गूँज रहे हैं। पहले ऐसा कुछ नही था। न स्कूल थे, न अस्पताल थे, था यह एकमात्र आश्रम, इसकी गाये, आदि-बाबा और यहाँ की खूबसूरत प्रकृति। इसमे आश्चर्य वाली कोई बात भी नही है। होनी भी नही चाहिए। दुनिया के बडे से बड महानगर की बसावट किसी न किसी क्षण तो एक अकेले आदमी का ही प्रयास रहा होगा किन्तु यह सब आपको सुनाना जरूरी है। इसके सुने बिना आप कभी भी मुक्तिनाथ के बारे मे नही जान पाये। और मुक्तिनाथ के बारे मे नही जान पायेगे तो इस पत्र के बारे मे भी कुछ नही जान पायेंगे, कुछ भी नही महाशय।

इस आश्रम का इतना सा इतिहास जानने के लिए न मालूम मुझे बाबा बैजनाथ के पास कितनी रातो जागना पडा था। जब सारा आश्रम सो जाता तो बाबा इस आश्रम का इतिहास बताने लगते। बताते जाते, बताते जाते, बहुत विस्तार से। मैंने तो आपको सहस्रांश भी नही बताया महाशय। बाबा जब इस आश्रम के इतिहास का वणन करते तो लगता मानो यह बाबा दस-बीस पीढिया जी चुका है। न तो उस तरह का वणन करने की मुझ मे क्षमता ही है और न ही इतना समय। रात सरक रही है घडी की सुई बारह के अक्षरो से आगे निकल गई है। अभी तो आपको इस आश्रम के बारे मे ही थोडा-बहुत जानना शेष है। फिर मुक्तिनाथ के बारे मे जानना होगा, तब कही जाकर इस पत्र के विषय मे जान पाओगे, जो अब भी मेरे हाथ मे पडा हुआ है।

यह मेरा सौभाग्य ही था कि मुझ जैसे अपरिचित व्यक्ति के सामने बाबा ने पूरे आश्रम के इतिहास का वणन कर दिया

वरना बाबा बहुत कम बोलते थे, तौल तौल कर वे।
बाबा के पास सुबह से शाम तक हजारों दर्शक आते। वे कम बोलते थे। प्राय एक बार आने पर वे उसे अपना आत्म- बना लेते। जब कोई भक्त दूसरी बार इस आश्रम में आता, तो बाबा से आँख मिलते ही उसे इस बात की सुखद अनुभूति हो जाती कि बाबा ने उसे पहचान लिया है। यह बाबा की विलक्षण स्मरण शक्ति थी आदमी को पहचानने, परखने की। इतने त्यागी और तपस्वी होकर भी वे गृहस्थों के बीच में बैठते सुबह-शाम रोजाना नियमित रूप से बैठते। उनसे दु ख-दर्द की बाते सुनते, देश की राजनीति की बाते करते, विदेश की राजनीति की भी। अपनी तरफ से कुछ भी नहीं जोडते थे। मजदूर से महाराजा तक सबसे समान व्यवहार ही बाबा का धर्म था। न वे किसी से कोई अपेक्षा करते, न किसी को वरदान सरीखी कोई बात कहते। बस बाबा के तो दर्शन ही वरदान बन जाते। यही आने-जाने वालों का कहना था। मानना भी था।

आश्रम की व्यवस्था यथावत चल रही थी। मेरा कार्यक्रम भी यथावत् चल रहा था। धीरे-धीरे आश्रम के क्रियाकलापों में मेरा भी मन रमने लगा था। मैं अपने विगत को अधिक से अधिक भुला देना चाहता था। न मैं विगत को याद करना चाहता था, न भविष्य के प्रति उदासीन। वर्तमान ही मेरा भविष्य था। वर्तमान ही मेरा सब कुछ था। न मुझे इससे अधिक की आवश्यकता थी न कम में मेरा गुजारा सम्भव था। इस आश्रम में स्थाई रूप से रहने वालों में मैं ही एक ऐसा प्राणी था, जिसकी वेशभूषा आश्रमवासियों से मेल नहीं खाती थी। आश्रम-वासी गेरुआ रंग के वस्त्र पहनते, घुटनों तक लम्बा कुर्ता, सिर पर गेरुआ रंग का ही साफा या तौलिया। घोटमोट सिर

तथा सफाचट दाढी-मूँछ। गले मे दडे-रडे मणियो की मालाएँ। पाँगे मे काष्ठ की पादुकाएँ और मेरी वेशभूषा मुझे अन्य आश्रम-वासियो से अलग कर देती थी अन्यथा में आश्रम के नियम-कायदो के अनुसार प्रात काल खूब तडके उठता, आश्रम की सफाई मे हाथ बँटाता गायो की सेवा करता, वावा की गाज की चिलम सुलगा कर पहुँचाता, रसोई मे भी हाथ बँटाता, पर मेरे तन के कपड कुर्त्ता, पाजामा और वढी हुई दाढी तथा लम्बे केश, मुझ आश्रम मे अब भी अजनवी वनाय हुए थे।

कई वार आदमी अपने वतमान मे खोकर अपने अतीत को एकदम भूल जाना चाहता है और मैं इस आश्रम म आने के वाद से पिछले कई महीनो से यही उपक्रम कर रहा था, लेकिन इस दुनिया का वडा विचिन नियम है महाशय। यहाँ कोई किसी को चैन से नही रहने देता। न अत्यधिक महत्त्वाकाक्षी सुखी है और न ही स्वल्पाकाक्षी। इस समय मेरा दाप दूसरी श्रेणी मे आने का ही था। एक दिन आसाम से एक जोडा वावा के दशनो हेतु आश्रम मे आया। दिन के दस ग्यारह वजे हाग। यह जोडा अक्सर आश्रम मे आता ही रहता था। इसलिए करीव-करीव हर आश्रमवासी से परिचित था। उस दिन वावा वाहर ही वैठे थे। चबूतरे पर तग्त पर वावा वैठ थ उनके पास ही नीचे फश पर यह जोडा। मैंने सवको चाय ले जाकर दी। उस जोड ने मुझे घूर कर देखा और वावा से मेरा पग्चिय पाना चाहा। वावा वडी ही समझदारी से वात को टाल गये। मेने सव कुछ सुन लिा था। वह जोडा दोपहर वाद जा चुका था। शाम होते-होते मेरा मन उदास हो गया। मेरी वजह से आश्रमवासियो को असुविधा हो रही है वावा जैसे सन्त पुरुष ने वात टालकर

उस जोडे को जवाब दिया। शाम की आरती के बाद मैं बाबा के चरणो मे जा गिरा। व बा मुझे आज्ञा दीजिए । मैं सुबह यह आश्रम छोड देना चाहता हूँ। बाबा ने तीखी नजर से एक ही सवाल किया, पर जाओगे कहाँ ? और मैंने लाचारी मे कह दिया था, "यह तो मैं भी नही जानता । किन्तु यहाँ से चला जाना चाहता हूँ।"

यायावर के लिए कभी स्थान निर्धारित नही होता। बाबा मेरी मन स्थिति समझ चुके थे। उन्होने रात्रि को सोने से पूर्व पुन मिलने का आदेश दिया और महाशय आज के लगभग पाँच वर्ष पूर्व की वह रात मुझे आज भी याद है। इसी आश्रम के एक कमरे मे रात को जब सारा आश्रम सो गया था, बाबा ने मुझ से आश्रम छोडकर जाने की विवशता का कारण पूछा था और मैंने वह सारी कहानी बाबा को सुनाई थी, जो मैं थोडी देर बाद आपको सुनाने जा रहा हूँ। बाबा को मेरा परिचय मिल चुका था। बाबा ने उठते समय आदेश दिया था, "जाओ आराम से नींद लो, कल से तुम इस आश्रम के अन्य लोगो की तरह गेरुआ कुर्त्ता पहनोगे। सिर घोटमोट, दाढी सफाचट रखोगे । पाँवो मे काष्ठ पादुकाएँ रखोगे और सिर पर गेरुआ तौलिया और कल सुबह से सारे आश्रमवासी तथा बाहर वाले तुम्हे 'मुक्तिनाथ' के नाम से जानेगे।"

और एक ही रात मे, अपने पिछले पैंतिस साल भुलाकर एक व्यक्ति यादवेन्द्र से मुक्तिनाथ बन चुका था। अगर यह कहानी यही समाप्त हो जाती, तो कुछ भी खास बात नही थी। आपको सुनाने लायक कुछ भी तो नही था। लोहार्गल बहुत पुरानी जगह है। बडा तीर्थ स्थल है उसके बारे मे आप पहले से भी बहुत कुछ

जानते होगे। आश्रम-व्यवस्था हमारी संस्कृति की एक विशेषता और सौम्यता है जिसे लोग सदियों से जानते आये है, बाबा बैजनाथ जैसे सच्चे सन्तो की कहानी अब तक एक-सी ही होती गई है। सन्तो को इतिहास मे नही, अच्छे कर्मों से जाना जाता है। इस दुनिया म यायावर बने कितने यादवेन्द्र न जाने एक दिन मौका पाकर मुक्तिनाथ बन जाते हैं। इस सब से कुछ भी तो असम्भव या अनहोनी नही है, लेकिन आपकी मजिल तो यह पत्र है, जिसकी कहानी अभी आपको सुननी है और इस पत्र की कहानी सुनने से पहले आपको मुक्तिनाथ के आगे की कहानी सुननी पडगी, और मुक्तिनाथ के आगे की कहानी सुनने के पहले आपको बाबा मुक्तिनाथ की कहानी सुनना पडगी और बाबा मुक्तिनाथ की कहानी सुनने के पहले आपको इस आश्रम की शेष कहानी सुननी पडगी। तभी इस पत्र की कहानी आप समझ पायेंगे।

यह वही कहानी है महाशय, जिसको सबस पहले ऐसी ही एक अधेरी रात मे बाबा बैजनाथ ने यादवेन्द्र से सुना था और सुबह होते ही यादवेन्द्र, यादवेन्द्र से मुक्तिनाथ बन चुका था। इसके बाद इसकी कहानी का दूसरी बार एक युवक इसी आश्रम मे सुन चुका था। उस युवक ने वह कहानी मुक्तिनाथ से नही बाबा मुक्तिनाथ से सुनी थी। उस बारे मे आपको बाद मे बताऊँगा, बताऊँगा अवश्य महाशय और तीसरी बार इसी कहानी को आप सुन रहे हैं लेकिन उस कहानी के शुरू होने के पूर्व आपको आग्रहपूर्वक बाबा मुक्तिनाथ की कहानी भी सुननी ही पडेगी और उससे भी पूर्व सुननी पडेगी, इस आश्रम की शेष रही कहानी।

यादवेन्द्र के मुक्तिनाथ बन जाने के बाद भी आश्रम व्यवस्था यथावत् चलती रही। उसमें किंचित् मात्र भी परिवर्तन नहीं आया। केवल परिवर्तन आया, तो इतना कि बाबा बैजनाथ के अब चार के स्थान पर पाँच शिष्य हो गये थे। मैं नहीं कह सकता, ठीक से तो नहीं कह सकता महाशय कि मुझे बाबा ने पाँचवाँ शिष्य धार्मिक तौर पर तथा आश्रम की व्यवस्था और कायदे-कानूनों के अनुसार कभी माना भी या नहीं और माना तो कब माना, किन्तु आश्रम में बाहर से आने वाले सभी व्यक्ति अब बाबा के चार के स्थान पर पाँच शिष्य देखने लग गये थे। कई बार आदमी को उसकी मान्यता दूसरे रास्तों से मिल जाती है। बाबा के पाँचवें शिष्य के रूप में मेरी भी मान्यता कुछ कुछ इसी प्रकार की ही थी। बाबा ने तो यादवेन्द्र को एक नया नामभर दिया था 'मुक्तिनाथ।" किन्तु शिष्य के रूप में, पारम्परिक शिष्य के रूप में 'मुक्तिनाथ की प्राण प्रतिष्ठा बाबा ने उस समय तो कम से कम नहीं की थी, पर आपसे झूठ क्यों बोलूँ ? आज बाबा इस धरती पर नहीं है। एक दिन मैं भी नहीं रहूँगा। आप बुरा न मानें, एक दिन आप भी नहीं रहेंगे। यही प्रकृति का नियम है, यही मृत्यु का काला कानून है यही संसार-चक्र है। फिर झूठ बोलने से क्या फायदा ? आपको सच ही बताऊँगा। बाबा ने भले ही मुझे पाँचवाँ शिष्य न प्रतिष्ठित किया हो मैं मन ही मन स्वयं को पाँचवाँ शिष्य मानने लगा था।

आदमी जिस आसानी से, शादी होते ही गृहस्थ बन जाता है गृहस्थी के राग रंग सीख जाता है, उतनी आसानी से आश्रम में प्रवेश कर, गेरुआ वस्त्र धारण कर साधु का जामा पहन लेता है, साधु की भाषा सीख जाता है महाशय भाषा हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, बंगला मराठी इत्यादि ही नहीं होती है, हर आदमी की एक निजी भाषा होती है। एक ही भाषा के अनेक रूप व्यवहार

रूप में प्रचलित है। एक अध्यापक की भाषा, व्यापारी की भाषा से भिन्न होती है, नेता की भाषा, मजदूर की भाषा से भिन्न होती है। सन्यासी की भाषा गृहस्थ की भाषा से भिन्न होती है और इस प्रकार की भाषाओं का अध्ययन-केन्द्र विश्वविद्यालय या महाविद्यालय नहीं होते केवल कमक्षत्र ही होता है, केवल कमक्षत्र और इतने दिनों से आश्रम मे रहते रहते मैं भी सन्यासियों की भाषा समझने लगा था, मैं भी थोडा-थोडा सन्यासियो की भाषा मे बोलने लगा था। मुक्तिनाथ मे पहला परिवतन यही से शुरु हुआ था।

आश्रम की व्यवस्थाओं मे मैं इतना उलझ गया था कि मुझे अपने विगत को याद करने का समय तक नही रहा। मैं कहा से आया हूँ, क्यो आया हूँ, इन प्रश्नो को कुरेदने मे मेरी रत्ती भर भी रुचि नही रह गई थी। बाहरी दुनिया से सम्पर्क के नाम पर इस आश्रम मे केवल तीन ही सुविधाएँ थी— बाहर से आश्रम मे आने-जाने वालो के साथ एक अनुशासित एव सीमित मुलाकात, आश्रम मे आने वाले दैनिक समाचार पत्रो का वाचन एव सुबह, दोपहर शाम आकाशवाणी से समाचार श्रवण। इसके अलावा बाहरी दुनिया से हमारा सम्पर्क बहुत कुछ सीमित हो था। यात्री लोग तो दशन करके, घण्टे दो घण्टे ठहर कर चल देते। इस आश्रम मे किसी स्त्री को रात्रि विश्राम की सुविधा नही है। स्त्री साथ होने से सूर्यास्त के पहले पहले यात्री को आश्रम छोडना ही पडता है। अकेला पुरुष यात्री भी, यदि यहाँ रात्रि-विश्राम करना चाहे तो उससे हमारा सम्पर्क उसकी भोजन व्यवस्थाओ व कपडो की व्यवस्थाओ तक ही सीमित रहता है। इसी तरह हम अखबार तो पढते थे तथा समाचार भी सुन लिया

करते थे किंतु उन पर आलोचनात्मक विचार विमर्श होना इस आश्रम की मर्यादा के प्रतिकूल माना जाता था। आज भी यही नियम है।

आश्रम के हर आदमी को अपने-अपने काम की जिम्मेदारी थी। उसमे किसी दूसरे का हस्तक्षेप कतई नही था, हाँ, आवश्यकता होने पर एक दूसरे की सहायता अवश्य ली जा सकती थी। मुझे काम किसी ने नही सौंपे। धीरे धीरे मैं काम करता गया, जिम्मेदारियो की सख्या बढती ही गई और एक दिन मैंने महसूस किया कि इस आश्रम के पाँचवें हिस्से का काम स्वत मेरे जिम्मे आ पडा है। चूंकि मैं बाबा की सेवा मे कुछ ज्यादा ही रुचि लेता था, इसलिए बाहर से आने-जाने वाले यात्रियो से मेरा परिचय तथा प्रगाढता बाबा के अन्य शिष्यो की अपेक्षा कुछ ज्यादा ही हो गई।

आश्रम का यह कायदा था कि हर आगतुक को भोजन खिला देने के बाद ही हम लोग भोजन करते। पाकशाला की जिम्मेदारी भी बहुत कुछ मेरी ही थी। रधन विद्या मे मैं बचपन से ही पारगत था। यह ठीक है कि आश्रमवासियो के लिए चपपटे स्वाद की सब्जी एव अत्यधिक मसालो की निर्मित वस्तुएँ वर्जित थी, किन्तु पाक-शास्त्री हर प्रकार के भोजन मे अपनी उपस्थिति बुलन्द कर ही देता है। मेरी देखरेख मे बने भोजन का स्वाद धीरे धीरे सारे आश्रमवासियो के लिए एव आगन्तुको के लिए एक विशिष्टता प्राप्त कर चुका था। सुस्वाद बने हुए भोजन से मस्तिष्क का विकास अच्छा होता है, मेरी बचपन से ही यह मान्यता रही है और इसीलिए सबसे पहले मैंने पाकशाला से ही अपना करतब दिखाना चालू किया।

न मालूम कितनी रातो मे बाबा ने जाग जाग कर मेरी आश्रम-व्यवस्था सम्बन्धी जानकारी को बढाया है। आश्रम व्यवस्था कब से प्रारम्भ हुई, भारत के कोने-कोने मे किस तरह के आश्रम फैले हुए है, कौन-आश्रम कौन से सम्प्रदाय का है किस सम्प्रदाय का आदि अवधूत कौन था, कौन-सा सम्प्रदाय किस प्रात मे ज्यादा प्रभावशाली है, ये सारी बातें बाबा को मुँह जबानी याद थी किन्तु इन सब बातो से कुछ भी बनता-बिगडता नही है। यदि बात यही तक सीमित रहती तो कुछ भी आपको सुनाने लायक नही था। कुछ भी तो नही कि तु जैसा मनुष्य चाहता है, वैसा हर समय घटित होता ही रहे, यह आवश्यक नहीं है।

शासन-व्यवस्था को चुस्त बनाने के लिए बीच-बीच मे कई बड प्रयोग शासको को करते रहने पडते है। यह नियम हर युग मे रहा है। पहले भी था, आज भी है, शायद कल भी रहेगा ही। ऐसा ही एक प्रयोग बाबा बैजनाथ के जीवनकाल म हुआ था। शासन-व्यवस्था का प्रयोग। स्वतन्त्र भारत की शासन-व्यवस्था मे पहला बडा प्रयोग।

आश्रमवासी आकाशवाणी से समाचार नियमित रूप से सुनते थे। हमन एक दिन सुबह-सुबह आकाशवाणी पर नया समाचार सुना। भारत म आपातकाल लागू कर दिया गया है। यद्यपि महाकाल एव अकाल के अलावा मोट तौर पर हमारे आश्रम पर किसी प्रकार के काल का प्रभाव पडने वाला नही था, किन्तु आपातकाल लगने के करीब एक सप्ताह बाद स ही हमार आश्रम मे कुछ गतिविधिया अनायास ही बढने लग गई थी। हमार यहा आश्रम मे आने-जाने वाले व्यक्तिया के चेहरे अधिकाशतया परिचित ही होते थे, कि तु आपातकाल लगते ही इसस विपरीत हो गया।

अब जो चेहरे हम आश्रम मे देखते, वे अधिकाश अनजाने तथा अपरिचित ही चेहरे होते। आगन्तुको की भीड भी बहुत बढ गई थी। कई बार सफेद वस्त्रधारी नेता बडी-बडी गाडियो मे आकर उतरते, बाबा के चरणो मे सिर नवाते, भेंट चढाते, आशीर्वाद लेते और खामोश-खामोश चले जाते। उनके इद-गिर्द आते कुछ साधारण आदमी उस समय, लोगो के चेहरे देखने से ऐसा लगता मानो सभी एक दूसरे से भयभीत हो। यह तो मुझे बहुत बाद मे पता चला था कि उस अवधि मे बडे-बड पुलिस अधिकारी, गुप्तचर विभाग के अधिकारी सादा वेश मे हमारे आश्रम मे आते अपनी जाँच करते और सब कुछ सामान्य पाकर बिना कुछ प्रकट किये ही वापस चले जाते। देश के अखबार मौन थे, लेकिन बाहर से यह खबरें आश्रम मे बराबर आ रही थी कि देश के बडे-बडे नेता गिरफ्तार कर लिये गये है, विशेषकर सत्तादल के विरोधी पक्ष के नेता।

और इसी आपातकाल के दौरान एक दिन कुछ अनहोनी घटित हो गई। अगर बाबा को अथवा हम पाँचो शिष्यो मे से किसी को गिरफ्तार कर लिया जाता तो उस माहौल मे किसी को भी आश्चर्य नही होता। न उसकी खबर अखबारो मे छपती। न गाँव वाले ही एक दूसरे के सामने इसकी ज्यादा चर्चा करते, लेकिन ऐसा कुछ नही हुआ। जो कुछ हुआ वह अप्रत्याशित था। एक 24-25 वर्ष का साधु, जिसने गेरुआ वस्त्र पहन रखे थे, पाँवो मे काष्ठ पादुकाएँ, गले मे बडी-बडी मणियो की माला, हाथ मे कमण्डल लिये इस आश्रम मे प्रविष्ट हुआ। बाबा ने उसे सादर बिठा कर एक योगी के अनुकूल उसकी आवभगत की। उसने 10 5 दिन आश्रम मे गुजारने की इच्छा व्यक्त की। बाबा ने सहर्ष स्वीकृति दे दी।

उस योगी ने दाढी मूँछ तो सफाचट कर रखी थी, किन्तु उसके सिर पर बडे-बडे बाल थे जिन्हे वह करीने से सवारता। सच कहूँ तो उस व्यक्ति का व्यक्तित्व मुझे उस समय बहुत ही प्रभावशाली लगा था, लेकिन अपने सिर को वह रात्रि मे सोते समय ही खोलता था, अन्यथा गेरुआ साफा हमेशा उसके सिर पर बँधा ही रहता। वह कनफाडा जोगी था। मुझे बाबा ने एक दिन बताया था कि इस तरह के कनफाडे साधु गोरख सम्प्रदाय मे अधिक होते है जिन्हे बहुत ही सम्मान की नजर से देखा जाता है। बिना कान फाडे हुए साधु को ओघड कहते हैं और उसका सम्मान भी आधा ही होता है।

यह साधु कहाँ से आया था, इसकी हम मे से अथवा बाबा ने तनिक भी जानकारी नही ली। उस नवागन्तुक के अप्रत्याशित व्यवहार से मैं कई बार शकाल हो गया था, किन्तु बाबा के सामने कुछ भी कहने की मेरी हिम्मत नही पडी। धीरे-धीरे उस युवा साधु का प्रभाव पूरे आश्रम पर बढने लग गया। बाबा के चारो शिष्यो पर पता नही उस युवा-साधु ने क्या सम्मोहिनी शक्ति फेंकी कि वे चारो धीरे-धीरे उसके आगे समर्पित होने लग गये थे, अगर बचे रहे तो मैं और बाबा। साधु साधु पर बेमतलब शका नही करता। शायद यही वजह थी कि बाबा ने उस नवागन्तुक को अपना भरपूर प्रेम दिया और विश्वास भी। मेरा चित्त भी धीरे धीरे शात हो गया। मैंने सोचा बाबा ने जब मुझ जैसे व्यक्ति को भी प्रश्रय दे रखा है तो यह तो साधु है। उसके लिए तो बाबा के दिल मे सम्मान होना स्वाभाविक ही है।

फिर भी सबकुछ यथावत् ही चलता रहा। नये साधु के आश्रम मे आने से भी आश्रम की व्यवस्थाओ मे कोई अतर नही

आया। अब आश्रम मे बाबा के शिष्यो की सख्या 5 स बढकर 6 हो गई थी। यद्यपि बाबा ने युवा-साधु को भी मेरी ही तरह अपरिभाषित ही रखा, किन्तु कई बार मनुष्य के कार्य स्वय परिभाषाएँ गढ लेते हैं। बाहरी दुनिया के लोगो ने युवा-साधु को छटवें शिष्य का दर्जा स्वत दे दिया था, बिना किसी समारोह के। काफी दिनो तक अपरिचित एव अपरिभाषित रहने के बाद उस नवागतुक का एक दिन आश्रम द्वारा नामकरण कर ही दिया गया। उस युवा-साधु को बाबा के आदेश से एक दिन सुबह सारे आश्रमवासी एव बाहर के लोग अभयनाथ के नाम मे जानने लग गये थे।

अगर ऐसे ही चलता रहता तो कुछ भी बात नही थी। जहाँ आश्रम होते हैं वहाँ उनके प्रधान भी होते है और जहा प्रधान होते है वहाँ उनके शिष्य भी होते है। यहाँ तक कुछ भी अनहोनी बात नही है। राजनीति मे कुछ भी स्थायी नही होता है, यहा तक कि शासन-व्यवस्था भी स्थायी नहीं होती है। ढाई वर्ष का समय चुटकियो मे बीत गया। आपातकाल की काली आँधी ने देश के समग्र आकाश को ढाप लिया था। एक दिन रोशनी का रथ अधेरे को चीरता हुआ फिर आगे आया। देश मे चुनाव हुए। चुनाव हुए तो चुनाव परिणाम भी घोषित किये गये।

और एक दिन हमने सुबह सुबह आकाशवाणी से समाचार सुना हमारी प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी ने आपातकाल समाप्त करने की राष्ट्रपति को सिफारिश की है तथा साथ ही अपने पूरे मत्रीमडल का इस्तीफा भी भेज दिया है। इस समाचार से भी इस आश्रम का कुछ भी बनने-बिगड़ने वाला नहीं था। आपातकाल समाप्त कर दिये जाने के बाद भी आश्रम वैसे ही चल रहा था, जैसे पहले चलता था, लेकिन प्रकृति कुछ

कानून मनुष्य के कानून से भी विचित्र है महाशय। आपातकाल लागू होने की खबर तथा आपातकाल के समाप्त होने की खबर हमे आकाशवाणी ने दी थी और उसके एक सप्ताह बाद ही हम आश्रमवासियो ने बाहरी ससार को यह खबर दी थी कि बाबा वैजनाथ नही रहे। यह खबर पाकर सारा आश्रम रो पडा था। बाहरी ससार रो पडा था, सब कुछ सूना-सूना बेगाना-सा। लगता बाबा अब भी आश्रम के कण-कण मे मौजूद है, किन्तु बाबा का पार्थिव शरीर इस बात को झुठला रहा था। तड़के तडके उठकर शिष्यो ने देखा बाबा अपने भजन-पूजन मे पालथी लगाकर बैठे तो बैठ ही रह गये। सदा-सदा के लिए हमेशा के लिए।

धीरे-धीरे आश्रम मे अन्य आश्रमो से साधु आना इकट्ठे हो गये थ। हजारा की सख्या मे बाहरी नर-नारी आ रहे थे। भीड रोके नही रुक रही थी। उस भीड मे वे चेहरे भी दिखाई पड़े, जिनको इसके पहले मैंने कभी नही देखा था। लोगो को बडी तसल्ली है। जब कोई चीज सामने होती ह तो सोचते ह इसे कभी भी प्राप्त कर लगे और विलुप्त होते ही उसे प्राप्त करने के लिए लोग दौड पडते हैं, होड मच जाती है। बाबा के बारे मे भी यही सत्य था। ऐसे लोग बहुत थे जो यह जानते थे कि बाबा तो हमारे बीच ही रहता है, इच्छा होगी तभी दर्शन कर लेगे। और जब बाबा नहीं रह तो ऐसे लोगो मे बाबा के अन्तिम दशना के लिए होड मच गई थी।

आश्रम मे ही बाबा की अन्त्येष्टि के लिए जगह ठीक की गई। एक नीम के वृक्ष के नीचे जो बाबा का ही लगाया हुआ था, बाबा की अन्त्येष्टि की गई। हजारो नर-नारी तथा हजारो साधु जो विभिन्न आश्रमो से आये थे, बाबा को अन्तिम विदा देकर म्लान मन हो उठे थे।

मृत्यु अवश्यम्भावी है। भगवान बुद्ध ने भी कहा है जो जन्म लेता है, वहमरता है और वावा, वह तो महान् आत्मा थे। उनका कैसा जन्म और कैसी मृत्यु ? उनका यशोगान तो पीढियो तक गूँजता रहेगा, फिर उनकी मृत्यु का कैसा क्षोभ ?

किन्तु महाशय, मनुष्य सोचता कुछ है और हो कुछ और ही जाता है। किसने सोचा था कि वावा एक रात तपस्या मे अपना कमरा बन्द करके बैठेंगे और सुबह वावा की देह ही मिलेगी, आत्मा, परम शक्ति मे विलीन हो जायगी। फिर भी सोचने और न सोचने से क्या होता है, शायद वावा ने भजन करते हुए इच्छा मृत्यु का वरण किया था।

बडा विचित्र नियम है इस दुनिया का और दुनिया के लोगो का। प्राचीन काल मे राजा महाराजा होते थे। उनकी मृत्यु पर उनका ज्येष्ठ पुत्र ही राजगद्दी का अधिकारी होता था। हमारी नयी सरकार ने ऐसे सब नियम कायदे तोड दिये। राजा नही रहे रजवाडे नही रहे। सबको समान अधिकार दे दिये। एक पिता के यदि चार पुत्र है तो पिता की सम्पत्ति मे सभी पुत्रो एव पुत्रियो को समान हिस्सा मिलेगा, किन्तु आश्रमो मे आज भी वही सामन्ती परम्परा चली आ रही है।

एक आश्रम के मुखिया के बाद उसका एक शिष्य ही उस आश्रम की गद्दी को प्राप्त कर सकता है, शेष नही। एक ससारी यदि चार पुत्र पुत्रियाँ पैदा कर अपनी सम्पत्ति मे उसे समान हिस्सा दे सकता है तो एक समदर्शी साधु चार शिष्य रखकर उन्हे समान रूप से हिस्सा देकर उस गद्दी का अधिकारी क्यो नही बना सकता, लेकिन यह हकीकत है महाशय, हमारे आश्रमो की व्यवस्था इस सन्दर्भ मे आज भी सामन्ती व्यवस्था पर ही आधारित है। यहा हमारा कानून गूगा दर्शक बनकर खडा है।

यदि ऐसा हो सकता तो न तो आपको यह कहानी सुनने की आवश्यकता पडती और न मुझे यह कहानी आपको सुनानी ही पडती। न यहाँ कोई मुक्तिनाथ होता, न वह आपको बाबा मुक्तिनाथ की कहानी सुनाता और न यह पत्र जो इस समय मेरे पास है मेरे हाथ मे पडा हुआ है, मुझे यहाँ प्राप्त होता। महाशय, रात के दो बज चुके है। अभी कहानी बहुत शेष है। सुबह होने से पहले आपको बाबा मुक्तिनाथ की कहानी सुननी है। फिर इस पत्र की कहानी सुननी है जो इस समय मेरे हाथ मे पडा हुआ है।

आश्रम मे बाबा विपुल सम्पदा छोड गये थे और वही सब आगे जाकर सारी विपत्ति का कारण बनी। सम्पत्ति कमाने से मुश्किल, सम्पत्ति का बटवारा होता है और इस आश्रम की सम्पत्ति भी इस नियम का अपवाद नही बन सकी। बहुत चाहने पर भी नही। जो आश्रम आदि बाबा ने स्थापित किया था, न मालूम कितनी बाबा पीढियो ने उस आश्रम की सम्पत्ति और श्री मे वृद्धि की, इसका ठीक-ठीक हिसाब बता पाना तो मुश्किल है महाशय, लेकिन बाबा बैजनाथ अपने उत्तराधिकार मे जो आश्रम यहाँ छोड कर गये है जिसे आप इस समय देख ही रहे हैं वह ससार के आधुनिक आश्रमो मे से एक है। आधुनिक से मेरा मतलब दुनिया की वैज्ञानिक साधनो की सुख सुविधाओ से है। आश्रम मे आप देख रहे हैं जितने मकान है, उनका दैनिक प्रयोग तो सम्भव है ही नही, बल्कि इतनी सफाई-व्यवस्था आश्रम वासियो के लिए एक समस्या बनी हुई है।

आश्रम मे हर काय के लिए अलग अलग भवन है। मन्दिर, शिवालय, गुरु-समाधि, भजन-कक्ष, जागरण कक्ष, हितोपदेश कक्ष,

दर्शन कक्ष, विश्राम-घर, अतिथिशाला, पाकशाला, गौशाला, पुस्तकालय सभी तो अलग अलग भवनो मे निर्मित है। यहाँ हर काम के लिए एक जगह निश्चित है। यहाँ परम्पराओ मे विश्वास किया जाता है, फैशन मे नही। किसी ने आज तक आश्रम के दैनिक-कार्यों मे इसकी सदियो प्राचीन परम्पराओ को तोडने की हिम्मत नही की। न कभी आश्रम के इतने लम्बे जीवन मे इसकी आवश्यकता ही महसूस की गई। यहाँ हर काम के लिए एक समय निश्चित है।

प्रात काल ब्रह्म-मुहूर्त मे सभी आश्रमवासी निद्रा त्याग देते है। फिर 6 बजे भगवान की आरती। 7 बजे भगवान की कलेवा आरती। फिर सारे आश्रमवासी सुबह की चाय पीते है। इस बीच सारे आश्रम मे झाड लग जाती है, फर्श को शुद्ध जल से धो दिया जाता है। फिर शुरू होता है आगन्तुको का मेला, जो दोपहर दो बजे तक चलता रहता है। दोपहर मे सभी आश्रमवासी एव आगन्तुक अतिथि भोजन करते है, फिर शाम 3 बजे तक पूर्ण विश्राम। उस समय लगता है, आश्रम के पेड़-पौधे एव पशु पक्षी भी विश्राम कर रहे हैं। फिर सायकाल 3 बजे दिन की दूसरी चाय, फिर उपदेश, भागवत-प्रवचन, धार्मिक व्याख्यान और रामायण-गीता का पाठ।

सायकाल फिर भगवान की आरती, रात्रि मे 8 बजे भोजन तथा 9 बजे से रात्रि विश्राम। यही इस आश्रम की दिनचर्या है, किन्तु फिर विषयान्तर हो गया है महाशय। यह स्वाभाविक है, जब बात मे से बात निकलती है तो ऐसा ही होता है। बता रहा था, इस आश्रम की विपुल सम्पदा की जो बाबा बैजनाथ अपने उत्तराधिकार मे छोड कर गये हैं, अथाह रुपया-पैसा, विशाल भवन, कई एकडो मे फैले बाग, अमरूद, अंगूर एव

नीबू का बगीचा। एक हजार बीघा काश्त की भूमि, बिजली लगे हुए चार कुए, पचासो पशु, वस्त्राभूषण, तरह-तरह के बर्तन, दो ट्रैक्टर, एक ट्रक, दो जीपे दो मोटर कारें इत्यादि। न मालूम कितने लाख की सम्पत्ति इस आश्रम मे सचित पडी है और जैसा कि मैं पहले भी बता चुका हूँ महाशय, यही सम्पत्ति इस आश्रम की विपदा का कारण बनी। यदि यह सम्पत्ति न होती तो बाबा के सारे शिष्य एक-एक कर न जाने कब खिसक गये होते। किसी को कानो-कान खबर तक न होती, लेकिन इसके ठीक विपरीत ही घटित हुआ इस आश्रम मे। वह सब इस सम्पत्ति की वजह से, विपुल सम्पत्ति की वजह से।

बाबा की अन्त्येष्टि सम्पन्न हो चुकी थी। उनकी समाधि बन चुकी थी। आश्रमवासी धीरे-धीरे बाबा की मृत्यु के बाद सामान्य होने लगे थे, किन्तु बाबा की मृत्यु के बाद एक विशेष परिवतन इस आश्रमवासियो मे आया। सभी एक-दूसरे को शका की निगाह से देखने लगे थे। सभी छुप-छुप कर, एक दूसरे की गतिविधियो एव क्रियाकलापो पर नजर रख हुए थे। धीरे-धीरे सब कुछ सामान्य हो जाता किन्तु उस स्थिति तक पहुँचने से पहले एक असामान्य स्थिति उत्पन्न हो गई। ग्रामवासियो को हमारी आश्रमवासियो की आन्तरिक अशान्ति का व आन्तरिक कलह का पता चल गया था। प्रबुद्ध एव समर्थ उपासको ने आश्रम की मर्यादा एव उसकी सम्पत्ति की रक्षा के लिए, आश्रम की सारी व्यवस्था के लिए न्यायालय मे अर्जी दे दी थी तथा न्यायालय के आदेश से आश्रम-व्यवस्था के लिए एक सात व्यक्तियो की कमेटी गठित कर दी गई थी। प्रबन्ध व व्यवस्था के तथा सारे वित्तीय अधिकार उस कमेटी को प्राप्त हो गए थे। अब आश्रम का एक पैसा भी बिना प्रबन्ध समिति की सिफारिश के व्यय नही किया जा सकता

था। मारे शिष्य अपने ही आश्रम मे अधिकारहीन हो गए थे। स्वय को निरस्कृत महसूस करने लगे थे। मैं भी उनमे एक था।

इसके बाद शुरू हुई आश्रम की गद्दी के उत्तराधिकार की लम्बी एव पेचीदगीपूण कानूनी लडाई। चारो पहले वाले शिष्य आवश्यकता से अधिक सरल, सीधे एव भोले थे। एक-एक कर वे स्वत ही अपने अधिकारो को छोडकर अलग होते गये। उन्होने केवल आश्रम मे अपने गुजारे तक का अधिकार माँगा। यह तो बाद मे पता चला कि उन चारो शिष्यो को अभयनाथ ने लालच देकर अपने पक्ष मे कर लिया था। लडाई रह गई थी मेरे एव अभयनाथ के बीच मे। मैं कानूनी दाँवपेच की पेचीदगियो मे पहले से भी परिचित था। अगर उन चारो शिष्यो मे से किसी को भी गद्दी का उत्तराधिकारी मान लिया जाता तो मैं यह कानूनी लडाई कभी नही लडता, किन्तु मुझे रह-रह कर एक ही बात कचोट रही थी कि कल का आने वाला यह नवागन्तुक आश्रम का स्वामी क्यो बने ?

मैं बार-बार मस्तिष्क पर जोर डालकर सोचता अभयनाथ को मैंने कही देखा है, देखा अवश्य है। मै यह स्मरण क्यो नही कर पाता कि अभयनाथ को इस आश्रम के पहले मैंने कही देखा है। एक और विशिष्ट बात जो मैने उन दिनो मे नोट की वह यह थी कि अभयनाथ के इस आश्रम मे आने के कुछ ही दिन बाद कुछ ऐसे लोगो का आना जाना बढ गया था, जिन्हे मै पहले से कतई नही जानता था। मैं क्या कोई भी आश्रमवासी उन्हे नही जानता था लेकिन महाशय शका करना साधु का स्वभाव नही होता और मैं भी बिना शका किये उन सब नवागन्तुको की गतिविधियो को देखता रहा।

मेरा एव अभयनाथ का बाबा के उत्तराधिकार का मामला काफी पेचिदगियाँ पकड चुका था। हम दोनो ही अपने उत्तरा-

धिकार का पर्याप्त प्रमाण नही जुटा पा रहे थे, किन्तु यह तो निश्चित हो ही चुका था कि हम मे से कोई एक इस विपुल सम्पदा वाले आश्रम का उत्तराधिकारी होगा क्योकि बाकी चार तो कभी के अपना अधिकार छोडकर मैदान से हट चुके थे। इतना सब कुछ होते रहने के बाद भी हम लोगो का आश्रम मे आवास-निवास पूर्ववत ही था। जहाँ आपत्तियाँ होती है वहाँ झगडे और विवाद भी हो ही जाते है। विवादो को यदि हम घर की देहरी के भीतर नही निपटा सकते तो विवाद बाहर कदम रख लेते है, कोर्ट-कचहरी मे भी इन्सान ही आते-जाते हैं। अगर बात यही आकर समाप्त हो जाती तो कुछ भी खास बात नही थी। न्यायालय हम दोनो मे से जिस किसी को भी विजयी बना देता वही इस आश्रम का गुरु स्थापित हो जाता, दूसरा या तो नम्बर दो की स्थिति लेकर गुजारा करता या आश्रम छोड कर और वही अपने को अपनी नियति के हवाले करता। अगर ऐसा ही होता तो यह कहानी मुझे आपको सुनाने की आवश्यकता नही रहती, लेकिन इससे कुछ अप्रत्याशित हो घटित हुआ, कुछ क्या एकदम ही अप्रत्याशित घटित हुआ। जब बात मे से बात निकलती है तो अनेक बातें जन्म लेती है।

जिन दिनो मेरा और अभयनाथ का उत्तराधिकार का मुकदमा न्यायालय मे चल रहा था, उन्ही दिनो एक सुबह एक अजीब घटना घटित हो गई। उस सुबह सारे आश्रम के चारो तरफ पुलिस ने घेरा डाल दिया था। पुलिस की चार बडी-बडी गाडिया थी, पुलिस के वरिष्ठ अधिकारियो ने आश्रम मे तलाशी लेनी चाही। हमने मना नही किया। सारे ग्रामवासी इकट्ठे हो गए। पुलिस की अनुसधानी नजरें पूरे आश्रम को छान चुकी थीं। उन्हे अपने सबूत के लिए जितनी चीजें चाहिये थी वे सब एक-

नित कर बडी गाडी मे डालकर ले गये और साथ मे दोनो हाथो मे हथकडी डालकर, अभयनाथ को भी जीप मे बिठाकर ले गये।

सारे आश्रम मे सन्नाटा छा गया। दिनभर सारे ग्रामवासी मुझे गालियाँ निकालते रहे। मेरे कुकर्मो को कोसते रहे। मेरे कुछ भी समझ मे नही आ रहा था। क्या करूँ? लोगो का कैसे शान्त करूँ? मैं दिनभर बाबा की तस्वीर के आगे जागता पडा रहा। बाबा मुझे बचा लो मुझे उबार लो। मैंने इस दिन के लिए तो आश्रम मे रहना नही शुरू किया था। बाबा, आपसे कुछ नही छुपाऊँगा सच-सच कहूँगा। मैंने तो अभयनाथ को गिरफ्तार कराने की सपने मे भी नही सोची थी, यह क्या हो गया बाबा, क्या हो गया?

जिस दिन अभयनाथ को आश्रम मे से पुलिस हथकडी डालकर गिरफ्तार करके ले गई, उस दिन सारा ग्राम स्तब्ध रह गया था। मुझे दिन-रात चैन नही पडा। जिधर देखो, एक ही चर्चा। बच्चे, बूढे, जवान, स्त्री, मर्द सबके सामने चर्चा का एक ही विषय था। मानो उस छोटे से देहात मे वाद विवाद प्रतियोगिता शुरु हो गई हो। कुछ लोग मेरा पक्ष लेकर कहते, मुक्तिनाथ को क्या पडी जो वह अभयनाथ को गिरफ्तार कराता। उत्तराधिकार की कानूनी लडाई तो कागजी है। फिर मुक्तिनाथ इस स्वभाव का व्यक्ति ही नही है। इस प्रकार हल्के ढग से दुश्मनी मुक्तिनाथ क्यो निकालेगा? फिर पुलिस ने कुछ भी तो नही बताया कि अभयनाथ को किस जुर्म मे गिरफ्तार किया गया है।

मेरा पक्ष-समर्थन करने वाले इस बात पर बहुत जोर दे रहे थे कि यदि मुक्तिनाथ ही अभयनाथ को गिरफ्तार कराता,

नो पुलिस के आगे वह अभयनाथ की जमानत देने लिए क्यों गिड़गिड़ाता ? वह तो पुलिस ने उसकी एक भी नहीं सुनी अन्यथा मुक्तिनाथ उसके लिए मोतबिर से मोतबिर जमानत दिलाने के लिए तत्पर था। दूसरा पक्ष, जो इस विषय के विरोध में था, अपना तर्क दे रहा था कि यह सब मुक्तिनाथ के ही हथकण्डे हैं। मुक्तिनाथ कानून कायदों में कुछ ज्यादा ही समझता है। उसने अपने वकील से मिलकर आश्रम की सारी सम्पत्ति हड़पने के लिए अभयनाथ को गिरफ्तार करा दिया ताकि उसका उत्तराधिकार निरापद हो जाय। गांव वाले कुछ लोग जो अभयनाथ के समर्थक थे, बहुत उग्र हो रहे थे। वे कह रहे थे कि अभयनाथ के गिरफ्तार होने से क्या, हम लोग मुक्तिनाथ को आश्रम नहीं हड़पने देंगे। चाहे इसके लिए हमें कुछ भी करना पड़े।

मुझे उस रात बिल्कुल भी नींद नहीं आई। न ही तनिक चैन पड़ा। मैं रातभर बाबा की तस्वीर के आगे निढाल पड़ा रहा। मैं मन ही मन बाबा से एक ही प्रश्न कर रहा था, बाबा क्या इसी दिन के लिए मुझे आश्रम में बुलाया था ? यदि गिरफ्तार ही करना था तो पुलिस मुझे गिरफ्तार करके क्यों नहीं ले गई। पता नहीं इसी ऊहापोह में कब रात बीती, कब सवेरा हो गया ? सुबह जब एक भक्त ने अखबार लाकर मेरे सामने रखा तो मैं भौचक्का रह गया।

अखबार के मुखपृष्ठ पर अभयनाथ की दो तस्वीरें छपी थीं। अगर यह बात यहीं आकर समाप्त हो जाती तो कुछ भी बात नहीं थी। गिरफ्तार होने वालों की तस्वीर समाचार पत्रों में रोज ही तो छपती रहती है, किसे फुर्सत है उन्हें देखने की, पर बात इतनी-सी ही नहीं थी जितनी आप समझ रहे हैं। बात

इससे कही बडी थी। उन दो तस्वीरो मे एक तस्वीर अभयनाथ की आश्रम मे गिरफ्तार किया गया उस समय की थी और दूसरी तस्वीर, सम्भ्रान्त नवयुवक की थी जो पहचानने पर बिलकुल अभयनाथ लगता था।

उस सुबह सारे देश के अखबार सुर्खियो से भरे पडे थे। भारत के एक प्रान्त के विधायक को, जिसकी एक भारी बैंक-डकैती के मुकदमे मे पुलिस को तलाश थी, बाबा बैजनाथ के आश्रम मे साधुवेश मे गिरफ्तार कर लिया गया है। अभियुक्त आपातकाल के लागू होने के तत्काल बाद से ही फरार था तथा अभयनाथ के नाम से आश्रम मे रहकर उत्तराधिकार के लिए मुकदमा भी लड रहा था। ये दोनो ही तस्वीरें अभयनाथ की थी।

अब इस प्रसग मे कुछ कहना शेष नही रह गया है महाशय। दूसरे ही महीने जसा कि प्रत्याशित था, न्यायालय ने मुझे बाबा बैजनाथ की गद्दी का एकमात्र उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। बहुत बडा समारोह हुआ, हमारे सारे भक्त इकट्ठ हुए आसपास के आश्रमो के साधु इकट्ठे हुए और उस बडी भीड ने मेरे गद्दी पर बैठने के बाद जब जयघाप का उद्घोप किया तो उसी जयघोप के साथ मै मुक्तिनाथ से बाबा मुक्तिनाथ बन गया था, लेकिन मेरी कहानी यही समाप्त नही होती महाशय। रात के दो बज चुके है। कहानी बहुत शेष है। सुबह होने के पहले पहले आपको सारी कहानी सुनानी है।

बाबा मुक्तिनाथ बन जाने के बाद मेरी जिम्मेदारियाँ आश्रम मे और भी बढ गई थी। अपने चारो गुरु भाइयो को मैंने पूर्ण सम्मान देना शुरू कर दिया तथा उनसे कहा कि हम सब मिल-जुल कर इस आश्रम को चलायेगे, ठीक वैसे ही जैसे

बाबा की मौजूदगी में चलाते थे। यह उत्तराधिकार तो एक निमित्त है, बाकी सारी जिम्मेदारी सभी की समान होगी।

आश्रम की व्यवस्था फिर यथावत् चलने लगी। सभी की श्रद्धा आश्रम के प्रति लौट आई थी। वैसे ही सारे काम होते रहे और यदि सब कुछ ऐसे ही चलता रहता तो मुझे आपको यह कहानी सुनाने की आवश्यकता ही क्या थी? किन्तु ऐसा ही नही चला। जो कहानी मैं आपको अब सुनाने जा रहा हूँ वह कहानी मैने एक दिन ऐसी ही अँधेरी रात मे एक और व्यक्ति को सुनाई थी, जिसका नाम बाद मे बताऊँगा, बताऊँगा अवश्य महाशय। वह कहानी अब मुझे फिर दुहरानी पड़ेगी। आपके सामने सारा कहानी दुहरानी पडेगी। अब इस समय रात के दो बज चुके है। रात काफी ढल चुकी है, पाँच बजने मे तीन ही घण्टे बाकी है। सुबह होने से पहले पहले शेष कहानी आपको सुनानी ही है महाशय, इसलिए अब असल बात पर ही आ रहा हूँ क्योंकि यदि आप शेष कहानी नही सुनेंगे तो आप इस पत्र के बारे मे कुछ भी नही जान पायेंगे, जो इस समय भी मेरे हाथ मे पड़ा हुआ है।

अभयनाथ को पुलिस पकड़कर ले गई थी। आश्रम से ही गिरफ्तार करके ले गई थी। यह आश्रम के लिए एक अनोखी घटना थी, शायद इस आश्रम की स्थापना के बाद से अब तक की इस तरह की पहली घटना और सबसे अधिक आश्चर्यजनक घटना भी। पता नही न्यायालय मे हम दोनो पक्ष अपने कैसे-कैसे सबूत रख पाते, रख पाते भी या नही, किन्तु पुलिस की अनुसधानी नजरो से अभयनाथ बच नही सका। धीरे धीरे सब रहस्य मेरे दिमाग मे स्वत ही सुलझते गये।

अभयनाथ का अजीब ही वेशभूषा मे आकर आश्रम मे रहना, फिर उसके आने के कुछ ही देर बाद कुछ अपरिचित

चेहरो की आश्रम मे नयी भीड । सम्भवत यही वे व्यक्ति थे, जो अभयनाथ के पीछे पडे हुए थे । अभयनाथ की खोज मे थे । इस आश्रम मे आने के पूर्व कभी यह पढा था कि हर अपराधी, अपराध के चिह्न कही न कही छोडकर अवश्य जाता है । अब यहाँ आने के बाद इस तरह के अपराध साहित्य को पढने की न तो लालसा है, न आवश्यकता ही, लेकिन बाहर रहते हुए जो पढा था वह उसे सच मे बदलते हुए इस आश्रम मे देख भी लिया था ।

जिस प्रकार बरसात हो जाने के बाद बादल धीरे धीरे हट जाते है तथा आसमान अपनी पूव स्थिति मे आ जाता है, वही हालत मेरे मन और मस्तिष्क की हो चुकी थी । अभयनाथ की गिरफ्तारी के बाद धीरे धीरे मेरा मन और मस्तिष्क सामान्य होने लगा था । एक दिन इसी सामान्य स्थिति मे लौटते-लौटते मुझे याद आया कि मैंने अभयनाथ को सबसे पहले आश्रम मे नही, लोहार्गल के रास्ते चलते देखा था । हम साथ-साथ चल रहे थे । अभयनाथ ने छोटी छोटी करीने से दाढी बढा रखी थी कन्धे पर एक झोला लटकाये हुए था, जूते हाथो मे ले रखे थे । बहते पानी मे चलने का यही एकमात्र निरापद तरीका होता है । यह बात भी मुझे अभयनाथ ने उस समय बताई थी । धीरे धीरे सब याद आ रहा था । अभयनाथ के दाहिने पैर पर छ अगुलियाँ थी ।

आश्रम मे मैंने इस बात पर कभी गौर ही नही किया । पुलिस ने जब अभयनाथ को गिरफ्तार किया उस समय जो कागजात बनाये, उनमे अभयनाथ का हुलिया वर्णन करते हुए पुलिस ने एक जगह लिखा था, अभियुक्त के दाहिने पैर की छ

अगुलियाँ है। इस बात का आभास मुझे एकदम सामान्य होने के बाद ही हुआ था।

लेकिन महाशय मैं असल बात से कुछ दूर हो चला गया हूँ और ऐसा होना नितान्त स्वाभाविक है। हम आश्रमवासी रोज-रोज तो किसी को किस्से-कहानियाँ सुनाते नही। जब सुनाने बैठ ही गया हूँ तो मन मे क्यो रखूँ। पता नही मन का बोझ चौथी बार किसी के सामने हल्का कर भी पाऊँगा या नही। अच्छा श्रोता सौभाग्य से ही मिलता है महाशय। आप देख ही रहे है, ज्यो-ज्यो रात ढल रही है बाहर अन्धकार उतना ही तेज होता जा रहा है। बीच-बीच मे दो तीन बार गीदड भी बोले है। लगता है उन्होने अपनी नींद का मध्यान्तर कर लिया है।

इस तरह गहराती रात मे तेज-तेज बरसात का गिरना मुझे बहुत रुचता है। बरसात किसे अच्छी नही लगती किन्तु मैं तो बरसात का दीवाना ही हूँ। लगता है पूर्व जन्म मे मै यदि स्त्री था तो जरूर मछली रहा होऊँगा और यदि पुरुष था तो शायद मेढक। बरसात और मेढक का बडा ही अटूट सम्बन्ध होता है। जब मौसम की पहली बरसात होती है तो रात होते ही गाव के आस-पास के तालाबो मे मेढक टर्र-टर्र का सगीत शुरू कर देते हैं। अब भी आप सुन रहे हैं मेढको का सगीत धीमे-धीमे गति पकड रहा है। आज दिन मे आषाढ की पहली बरसात हुई है। सब कुछ हल्का-फुल्का लगता है। जी करता है, सुबह होते ही तालाब के किनारे जाकर बैठ जाऊँ पानी से लबालब भरा तालाब, उसमे तैरते मेढक, आसमान पर नाद लगाती टिटहरी। मुझे आज भी सुदूर अपने गाँव की पृष्ठभूमि मे लौट चलने के लिए बाध्य करते हैं।

मैं आपको बता ही चुका हूं महाशय, अब ऐसा कोई रास्ता बचा ही नही है, जो मुझे वापस अपनी जन्मभूमि तक पहुँचा दे। अब बची है उसकी मीठी यादें, बरसाती यादे, चपलता की यादें और वे यादे यदि आज न होती तो मैं आपको अपने बचपन की कहानी कभी नही सुना सकता। अगर बचपन की कहानी यदि नही सुना सकता तो यौवन की कहानी भी नही सुना सकता और वह भी नही सुना सकता तो जयपुर तक पहुँचने की कहानी भी नही सुना सकता। उसके आगे की कहानी जो मैने आपको अभी सुनाई है वह भी नही सुना सकता और फिर यह सब नही सुना सकता तो इस पत्र की कहानी भी नही सुना सकता, जो इस समय मेरे हाथ मे पडा हुआ है।

वैसे गहराती रात मे मौसम मे कुछ नमी भी बढ गई है। बरसात के बाद ऐसा होना कतई अप्रत्याशित नही है। ऐसे मौसम मे मन करता है, एक कप गरम चाय पिएँ, किन्तु इस समय गरम चाय बनाने का अर्थ होगा, आश्रमवासियो की निद्रा-भग और आश्रमवासी यदि जाग गए तो यह कहानी जो मैं आपको सुनाने जा रहा हूँ, वह अधूरी ही रह जायेगी। आपने अपनी नीद खराब करके अब तक जो इतनी कहानी सुनी है, उसका भी आपके लिए कोई अभिप्राय नही रह जायेगा, यदि आप आगे की कहानी नही सुन सके। इसलिए चाय का मोह इस गहराई रात मे एकदम से त्यागना ही पडेगा, जरूर त्यागना ही पडगा।

वैसे भी पता नही कितनी मोह, माया ममता को इस आश्रम मे प्रवेश करने के बाद तिल-तिल कर मार चुका हूँ। बहुत जतन करने पडे है इस सीढी तक पहुँचने के लिए, इस

स्थिति को प्राप्त करने के लिए अन्यथा क्या नही था मेरे पास ? फिर क्या कारण था कि मुझे जयपुर से गाडी पकड कर सीधा सीकर और वहा से लोहार्गल जाना पडा । ऐसी कौन-सी मजबूरी थी मेरे पास जो मुझे लोहार्गल से इतनी दूर इस आश्रम के द्वार तक खीच लाई । इस आश्रम मे प्रवेश करना जितना मुश्किल है, उससे भी ज्यादा मुश्किल है इस आश्रम से अलग हो जाना । मोह-त्याग काफी अभ्यास के वाद सम्भव हो सकता है किन्तु मोह त्याग की स्थिति को त्यागना अत्यन्त दुष्कर काय है और निश्चित रूप से यहाँ आने के वाद भी कोई न कोई ऐसी वात जरूर रही होगी, जो मुझे इस आश्रम मे वाध हुए है । मैं आपको पहले भी वता चुका हूँ । रुपये पैसे का लालच मेरे लिए अव कोई प्रलोभन नही रहा, आदर और श्रद्धा, इस आश्रम मे रहते हुए मैंने थोक भाव मे प्राप्त की ।

फिर भी ऐसा कुछ जो मुझे थामे हुए है और यही वात तो मैं आपको वताने जा रहा हूँ । एक एक कर सारी वातें वता दूँगा, लेकिन आगे की कहानी जानने से पहले आपको मेरे वचपन तक लौटना ही पडेगा, लौटना ही पडेगा महाशय ।

अगर उस रात इतनी तेज वर्षा नही हुई होती तो मैं रातभर जागता ही नही । क्यो जगता ? भला वचपन मे कोई वालक विना वात रात मे विस्तर पर पडने के वात आसमान के तारे गिनता है ? लेकिन मुझे जागना पडा था उस रात । वर्षा वहुत तेज थी । छप्पर का मकान जगह-जगह से टपक रहा था । ज्यो ही पानी का टपका आकर वदन पर गिरता, एक सिहरन-सी दौड जाती ।

उसे भुलाने का उपक्रम कर, करवट वदल कर लेटता तो दूसरा टपका टप् से गिरता । यह प्रतिस्पर्धा जागने और सोने

के बीच मे रात-भर चलती रही। अन्धकार भी खूब था, प्रकाश की उस जमाने मे व्यवस्था थी ही कहाँ। सम्पन्न घरो मे लोग चिमनी या तेल का दिया जलाते थे, वह भी बहुत आवश्यकता होने पर। सुबह होते-होते पूरा गाँव ही जाग चुका था। लोग अपने-अपने बैलो को लेकर कधो पर हल रखकर अपने खेतो की ओर दौड रहे थे। मेरी हल जोतने की तो उम्र नही थी, किन्तु बरसात के पानी मे नहाने की उम्र तो थी ही।

वडा अन्तर था आज के देहाती वातावरण मे और उस जमाने के देहाती वातावरण मे। आज के कोई चालीस वर्ष पूर्व का ग्राम्य-वातावरण आज की तरह व्यस्तता, आपाधापी और बेगानेपन का नही था। ज्यो-ज्यो बरसात का समय नजदीक आता, गाँव वालो की गोष्ठियाँ बढने लग जाती। बरसात होने के बाद तो चार छ महिने खेतो पर चक्करघिन्नी रहना ही है। इसलिए न इकट्ठे होने वाले भी इन गोष्ठियो मे जमकर भाग लेते। ये गोष्ठियाँ कही भी हो सकती थी, किसी चौपाल के एक कोने मे, गाँव के बाहर वाले बड के पेड के नीचे, उत्तर वाले तालाब पर या स्कूल के इर्द-गिर्द। उन दिनो न तो आज की तरह नर्सरी और के० जी० स्कूल थे, न ऐसे अध्यापक ही। अध्यापक की पहचान उसकी बेत से होती थी, ज्ञान से नही।

जो अध्यापक अपने शिष्यो को जितना अधिक मारता, वही सबसे कुशल अध्यापक माना जाता। उन दिनो पद्मश्री और पद्मविभूषण जैसी उपाधियो के वितरण का रिवाज नही था। मैं समझता हूँ उन दिनो इस प्रकार की उपाधियाँ शायद चलने मे ही नही आई थी, लगता ऐसे है अस्तित्व मे ही नही आई थी अन्यथा मेरे अध्यापक को अपने शिष्यो को बेंत लगाने मे अवश्य

ही पद्मश्री तो मिल ही जाती। मैं नही कह सकता उस समय के मेरे वे अध्यापक जी आज कहाँ है, इस दुनिया मे हैं भी या नही, लेकिन उनके मारक व्यक्तित्व के कारण स्कूली दिनो की सारी घटनाएँ एक-एक कर मेरे जेहन मे पूरी तरह से समाई हुई है और उस दिन भी चन्दा को साथ लेकर तालाब पर नहाने चले जाने पर बेंतो से हम दोनो की वो धुनाई की गई, जैसे कोई धोबी कपडे को फेंट-फेंट कर करता है। मुझे यह बिल्कुल भी विश्वास नही था कि चन्दा मेरे कहते ही तालाब पर जाने के लिए फौरन तैयार हो जायेगी। चन्दा हमारे गाँव की एक शहरी बुआ की लडकी थी।

वह अपनी माँ के साथ साल मे एक दो बार शहर से हमारे गाव अवश्य ही आती और आती तो वह मेरे साथ खेलने से कभी नही चूकती। तालाब पर हम नहाने गये, उस समय बरसात एकदम रुक गई थी, किन्तु कुछ ही देर बाद जब हम दोनो तालाब के पानी मे नहा रहे थे, अचानक वर्षा ने पुन रग पकडा। आकाश काला पडने लगा। देखते ही देखते मूसलाधार पानी गिरने लगा। तालाब से निकल कर पास के पेड के पास जाकर खडे होने के अलावा हम दोनो के पास चारा भी नही था। ठण्डी हवा से हमारे कपकपी छूट रही थी। चन्दा की फ्राक एकदम पानी से तरबतर थी। मैंने अपनी बनियान उतार कर उसे सिर पर डाल दिया था, ताकि सिर पर पानी का बचाव हो सके, किन्तु ऐसा बहुत देर नही कर सका। चन्दा ठण्ड से काँपने लगी तो मैंने अपनी गीली बनियान निचोड कर चन्दा के सिर पर रख दी। चन्दा पहले तो दोनो आँखो मे मुस्कराती हुई मुझे देखती रही, फिर और पास आकर बोली—"ऐसा क्यो किया ?"

मैं तुम्हे प्यार करता हूँ चन्दा, इसलिए ।
यह प्यार क्या होता है ?
तुम मुझे सुन्दर लगती हो, यही प्यार होता है ।
इससे क्या ?
मैं बड़ा होकर तुमसे शादी करूँगा ।
धत् तेरे की । हूँ ! मुझसे शादी करेगा । तुमको मेरे जैसी खूबसूरत वहू कहाँ से मिलेगी ?

और महाशय सच मानिये उस समय के मेरे बालक मन मे एक स्वाभिमान जाग उठा । क्या चन्दा इतनी खूबसूरत है और क्या मुझे चन्दा जैसी खूबसूरत पत्नी नही मिल सकेगी । इसी उधड बुन मे मैं बहुत देर तक इधर उधर देखता रहा । सच कहूँ तो उस समय न तो मुझे प्यार का ही मतलब समझ मे आता था, न पत्नी का हो । मेरी उम्र ही क्या थी । दस वर्ष का बच्चा प्यार और पत्नी के बारे मे समझेगा भी क्या ? किन्तु इससे कोई अन्तर नही पडता है । उस समय जो कुछ मेरे मन मे भाव थे, भले ही वे परिपक्व एव अनुभवशील न हो, किन्तु मेरे बालक मन ने मन ही मन जो प्यार और पत्नी शब्द का अर्थ लगाया वह अर्थ ठीक वही था, जो पूर्ण जवान मस्तिष्क मे होता है ।

शब्द मुँह से निकलते है और भावनाएँ हृदय से । बिना शब्दो के भी भावनाएँ अपना अर्थ निकाल सकती हैं, किन्तु बिना भावनाओ के शब्द कभी अर्थ नही निकाल सकते । मेरा पुरुष मन चाहे वो कितना ही उम्र का क्यो न हो, यकायक अहकारी हो उठा । मैंने चन्दा के सिर पर रखी मेरी बनियान वापस उतार ली और बोला, 'अपने आपको क्या समझती हो,

मैं तुमसे भी खूबसूरत पत्नी लाऊँगा" और पता नहीं हम दोनों मे आगे वाक्‌युद्ध कितनी देर और चलता यदि हमारे अध्यापक जी तालाब पर स्नान करने नहीं पहुँच जाते। आज उनके साथ उनकी हम उम्र के गाँव के 5-4 युवक और भी थे। हम दोनों की सिट्टी पिट्टी गुम। सुबह हमारे साथ स्कूल मे क्या वर्ताव होगा, इस बात का अनुमान हम दोनो ने उसी समय खड़े-खड़े ही लगा लिया था।

हर बात का अर्थ होता है तो एक उद्देश्य भी होता है। अभी जो मैंने आपसे कहा उस घटना का अथ तो एकदम साफ-साफ है, किन्तु मैंने यही घटना आपको क्या बताई ? इससे आगे-पीछे की भी तो बतला सकता था। चन्दा के पहले भी कोई न कोई बाल-सहेली तो मुझे बचपन मे मिली ही होगी, उसके बाद भी मिली होगी तो कुछ भी आश्चय नहीं है, परन्तु मैंने यह बात आपको जान बूझकर ही बताई है। इसके पीछे एक उद्देश्य रहा है। कहना न होगा महाशय, एक दिन मेरी शादी भी हो गई। मेरी पत्नी चन्दा से ज्यादा खूबसूरत थी या चन्दा ज्यादा खूबसूरत, यह बात तो मैं आपको बाद मे बताऊँगा। मेरी बाल-सहेली चन्दा ने एक सौन्दर्य की ग्रन्थि मेरे मन और मस्तिष्क मे पैदा कर दी थी यही ग्रन्थि इस इतने बड़ अनथ का कारण बनी और स्वीकार करूँ तो इस पत्र का भी, जो इस समय भी मेरे हाथ मे पड़ा हुआ है।

रात बहुत थोड़ी शेष रह गई है। सुबह होने ही वाली है। सुबह होने से पूव ही यह कहानी मुझे आपको सुना देनी है और ज्यों-ज्यों रात सरकती जाती है, आदमी को नींद नजदीक नजदीक खींचती है, मुझे नींद नहीं आ रही है। आज के पहले

बहुत सो चुका हूँ, आगे भी सोने के समय मे कमी आने वाली कम से कम इस समय तो बिलकुल ही नही लगती है। मुझे नीद से कोई तृष्णा भी नही है। आपका ख्याल करके ही मुझे कुछ चिन्ता हो चली है, परन्तु महाशय मैंने देखा है लोग-बाग किसी काल्पनिक कहानी या उपन्यास को पढने मे पूरी-पूरी रात जाग लेते है। फिर मैं तो आपको सच्ची कहानी सुना रहा हूँ। इसलिए आपको थोडी देर और जागना ही है मेरे आग्रह पर ही जागना है।

चन्दा बहुत खूबसूरत थी। जब वह मेरी बाल-सहेली थी उस समय भी, जब पूर्ण युवती हो गई थी तब भी। चन्दा मेरी जाति की नही थी, किन्तु किसी के सुन्दर होने या न होने से जाति का कोई अन्तर नही पडता है। सुन्दरता की एक ही जाति होती है सुन्दरता, परन्तु सुन्दरता सम्पूर्ण और सार्थक नही होती। यह बात मैंने बहुत बाद मे जीवन मे अनेकानेक अनुभव करने पर सीखी थी। सुन्दरता भी अन्य बहुत-सी बातो की तरह एक सापेक्ष वस्तु है, निरपेक्ष नही। इसकी कोई सीमा भी नही होती। आप जब किसी बस या रेलगाडी मे सफर करते है तो उस समय उस पूरी बस मे या डिब्बे मे बैठी हुई सारी सवारियो मे जो खूबसूरत लडकी होती है, उसे सफर करती हुई सवारियाँ उस बस या डिब्बे की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी घोषित कर देती है। यद्यपि इस प्रकार की घोषणा का कोई समारोह नही होता, केवल सवारियाँ बार बार उस सुन्दरी पर नजरें गडाकर उसे सर्वश्रेष्ठता का ताज पहना देती है और अगले ही स्टॉप पर उससे कही ज्यादा सुन्दर लडकी उस बस या डिब्बे मे सवार होती है तो पहले वाली युवती का ताज छीना जा चुका होता है।

यही हालत चन्दा के विषय मे थी। चन्दा खूबसूरत थी। मेरे गाँव मे उस समय उससे ज्यादा खूबसूरत और कोई बाल-सहेली नही थी, इसलिए वह खूबसूरत थी। समय की गति आदमी को जवानी मे प्रवाहमान बना देती है और बुढापे मे पगु। जिस चन्दा ने मुझे सौन्दय-वोध का पहला पाठ सिखाया था, तब से वर्षो-वर्षो तक मैं इसी मृगतृष्णा मे भटकता रहा।

सौन्दर्य की चाह जवान होते आदमी को तूफान बना देती है। मैं भी उसी तूफान की तरह सौन्दय-वोध को विकसित करने के लिए एक दिन मेरा गाँव छोडकर आगे बढ चला था, किन्तु आगे बढने की बात अभी ठहर कर बताऊँगा। इसके पहले आपकी एक समस्या का समाधान तो कर ही दूँ। यह ठीक है कि मैं इस समय आश्रम का सन्यासी हूँ। इस समय इतने गम्भीर वातावरण मे मैं आपको सौन्दय की क्या बातें बताने लगा, लेकिन आप यह क्यो भूल जाते है कि मेरा कोई बचपन भी तो हुआ था। जब मै आपको विश्वास दिला चुका हूँ कि अपनो बचपन की कहानी भी सुनाऊँगा, यौवन की भी। फिर बचपन और यौवन तो सबका करीब-करीब समान सा ही होता है, महाशय।

इसलिए यह सब नही बताकर मै अपने बचपन और यौवन के साथ अयाय नही कर सकता। सच को छुपाना साधु का धर्म भी नही होता। मैंने यह पूरी कहानी जो अभी आपको सुना रहा हूँ, एक रात इसी आश्रम मे बाबा को भी सुनाई थी। बाबा ने कहा था—"बेटा हम साधु भूतकाल को नही देखते। हमारे लिए भूत और भविष्य, वतमान मे ही समाविष्ट रहते है। ऋषिराज वाल्मिकी का पूर्व-चरित्र उसे ऋषि बनाने मे कही आडे नही आया। सुधार का नाम ही साधना है, बिगाड का

नाम ही वासना है।" और इसीलिए मैं आपसे कह रहा हूँ। आप आग्रहपूर्वक मेरी पूरी कहानी सुन लीजिए। मेरी बाल-सहेली की कहानी सुनने पर आपत्ति मत कीजिए, अन्यथा तो आप काजल की कहानी नही सुन पायेंगे, काजल की कहानी नही सुन पायेंगे तो मेरी पत्नी की कहानी नही सुन पायेंग । यदि पत्नी की कहानी नही सुन पायेंगे तो उससे आगे की कहानी नही सुन पायेंगे और उसमे आग की कहानी नही सुन पायेंगे तो इस पत्र की कहानी भी नही सुन पायेगे, जो इस समय मेरे हाथ मे पडा है।

उस दिन के बाद भी चन्दा मुझ से बहुत बार मिली है। वह जब भी गाँव मे अपनी माँ के साथ आती और महीने दो महीने रुकती तो उसे हमारी ही पाठशाला मे पढने भेज दिया जाता था। झूठ क्यो कहूँ, मैं ही उसे आग्रहपूर्वक अपने साथ पढने ले जाता था। व्यक्ति के मन मे अहकार चाहे कितना ही भयकर क्यो न हो, वास्तविकता की कठोर भूमि पर उसे झुकना ही पडता है और उस समय मेरी बाल-सहेली चन्दा के अतिरिक्त मेरे पास किसी अन्य का विकल्प भी तो नही था। बाल-सहेलियाँ और भी थी, परन्तु इससे क्या, दोस्ती हर किसी से थोडे ही हो सकती है, फिर वह चाहे जिस उम्र की क्यो न हो।

अहकार और दोस्ती मे जब होड लगती है तो उसमे तात्कालिक विजय तो अहकार की ही होती है, किन्तु उसमे भी एक दोस्ती छिपी रहती है और अन्तिम विजय हमेशा दोस्ती की ही होती है, किन्तु दोस्ती जो इस तरह के टकराव से उत्पन्न होती है वह मनुष्य को थोडा-सा बेईमान बना देती है। अह-कारी किसी मजबूरी मे दोस्ती तो कर लेता है, किन्तु मौका पाकर अपने दबे अहकार का प्रदर्शन करने की ताक मे भी रहता है।

मैं भी ऐसे ही किसी अवसर की तलाश मे था। जाहर कुछ और मन मे कुछ और, जब तक दूसरा ईष्ट न मिले, जो कुछ पास मे है उसे मत छोडो।

यही से आदमी का वचपन सासारिक्ता की ओर दौडने लगता है, जब ये भावनाएँ व्यक्ति मे आना शुरू हो जाती हैं, वह वचपन को छोड किशोरावस्था की तरफ वढने लगता है। व्यक्ति की अवस्था और भावनाओ मे वहुत वडा साम्य होता है। अगर मेरे मन मे इस तरह की सासारिकता की भावनाएँ पैदा ही न होती तो आगे जाकर इतना वडा अनथ नही होता। जो इस पत्र का कारण वना है, किन्तु महाशय, आदमी रोज-रोज तो वच्चा रह नही सकता। आज का वालक कल किशोर होगा, परसो का युवक, तरसो का अधेड और नरसो का वृद्ध। प्रकृति का यही शाश्वत नियम है, महाशय शाश्वत नियम। इसे न कोई आज तक रोक सका है, न भविष्य मे कोई रोक सकेगा।

मेरे वचपन ने दुष्टता से सन्धि शुरू कर दी थी। न मैं खूबसूरत वीवी का मोह त्याग सकता था न चन्दा की दोस्ती। मेरे उस गाँव मे चन्दा से मेरी आखिरी मुलाकात हुई, आज के वहुत वर्षा पूर्व हुई। कहना न होगा, उस समय मेरी उम्र 16 वर्ष पार कर चुकी थी। किशोर मन मे शहर मे जाने के सपने थे, अध्ययन के सपने थे। इसे सयोग ही कहा जा सकता है कि मैं गाव की पाठशाला छोडकर जिस शहर मे अध्ययन करने जा रहा था वही चन्दा का घर था। दोनो को ही इस निर्णय से खुशी होना स्वाभाविक था।

अब चन्दा से जल्दी-जल्दी मिलने की सम्भावनाएँ वढ गई थी। एक तो शहर इतना वडा नही था, दूसरा चन्दा गाँव मे रिश्ते मे हमारी बुआ की लडकी थी। इसलिए समय-बेसमय उसके

घर जाना भी वर्जित नही था, और एक दिन स्कूल खुले तो मैंने अपने आपको उस छोटे से शहर के गलियारे मे खडा पाया। गाँव की गलियाँ छोडते हुए, हरे-भरे खेत छोडते हुए, पानी से भरा तालाब छोडते हुए मुझे बेहद दु ख हुआ था। मुझे घर वालो ने बहुत आश्वासन दिये थे, बेटा शहर मे किसी तरह की तकलीफ नही होगी न खाने-पीने की, न घूमते-फिरने की। बजारा मन लौट-लौट कर गाँव के खेतो की पगडण्डियो पर घूम रहा था। जहाँ मै और चन्दा साथ-साथ वर्षा मे भीगते हुए, गर्मी मे तपते हुए, शीत मे ठिठुरते हुए साथ-साथ खले थे, लेकिन समय पर कोई विजय प्राप्त नही कर सका है महाशय, कोई भी नही। आदमी भी नही, देवता भी नही। समय सरकता ही जाता है।

एक दिन मैं और चन्दा दोनो ही किशोर हो चुके थे। धीरे धीरे बचपना छूटता जा रहा था बचपन का साथ भी। शहर मे अध्ययन करते समय मुझे एक दिन पता चला कि चन्दा की शादी तय कर दी गई है और शीघ्र ही उसके विवाह की तैयारी शुरू होने वाली है। मेरे पास अब केवल एक ही विकल्प बचा था, खूबसूरत पत्नी खोजने का। ताकि मै चन्दा की शादी के बाद यह दिखा सकूँ कि खूबसूरती क्या होती है? इस सौन्दय-बोध की भावना ने मेरे मन पर प्रभाव नहीं डाला होता तो कभी भी सौन्दर्य की ग्रन्थि मेरे मस्तिष्क मे नही जमती। अगर ऐसा होता तो वह अनर्थ भी नही होता, जिसकी कहानी म आपको सुनाने जा रहा हूँ।

घटनाएँ घटती ही रहती है। अर्थ-अनथ तो मानव जीवन ने होते ही रहते है। हरेक अनर्थ भी महत्त्वपूर्ण नही होता, जिसकी कहानी इस तरह के रात के गहरे सन्नाटे मे एकान्त मे किसी

को सुनानी पडे। ऐसे स्मृति में रखने वाले अनर्थ बहुत ही कम होते हैं। जिस अनर्थ की कहानी आप सुनने जा रहे हैं, वह उन्हीं बहुत कम में से एक है लेकिन यह भी एक शाश्वत सत्य है कि मनुष्य चाहे जितना समझदार क्यों न हो, अनर्थ को होना है तो होकर ही रहेगा। इसी का नाम होनी होता है, होनी अर्थात् जिसे किसी भी कीमत पर घटना ही है।

चन्दा की इस कहानी से आपका कुछ भी बनने-बिगडने वाला नहीं है और अब तो शायद मेरा भी नहीं। चन्दा अपने ही शहर में व्याही गई थी। यदा-कदा बाजार में उससे मुलाकात भी हो जाती थी। इस बीच में पढाई-लिखाई में काफी मन लगने लगा था।

चन्दा की कहानी फिलहाल यहीं छोड रहा हूँ और भी न जाने कितनी कहानियाँ बीच में छोडी गई हैं। यह तो सम्भव हो ही नहीं सकता कि एक आदमी अपने बचपन की पूर्ण स्मृति को चन्द घण्टों में बाँध सके। स्मृतियाँ अनन्त होती हैं। जो पल पल में घटा है वह स्मृति-पटल पर सब जमा हुआ है। जिस तरह धरती के नीचे की एक परत हटाने पर दूसरी परत उभर आती है, दूसरी हटाने पर तीसरी, तीसरी हटाने पर चौथी। यही क्रम चलता रहता है, वैसी ही हालत स्मृतियों की हैं, लेकिन इन सबसे क्या लेना देना। जितना यथेष्ट है वही उचित है।

चन्दा के बाद जो दूसरी लडकी मेरे जीवन में आई वह अपेक्षाकृत ज्यादा खूबसूरत, अधिक आकर्षक एवं यथेष्ट किशोरी थी। अध्ययनकाल का रोमांस होता ही है पागल बना देने वाला। उसे पाकर मैं एक तरह से चन्दा को भूल ही चुका था।

इधर चन्दा भी बहुत कम दिखाई पडती थी । अब वह कोई किसी गाँव की दुहिना तो थी नही जो कि फ्राक पहनकर नगे पाँवा मिट्टी मे दौडती हुई, मेरे पीछे-पीछे भागती हुई किसी पानी के भरे तालाब मे स्नान करने चली आती । वह अब एक कुल-वधू बन चुकी थी, जिसकी अपनी सीमाएँ और मर्यादाएँ होती है ।

चन्दा का अब घर से निकलना भी बहुत-बहुत सीमित हो गया था । या तो वह अपने ससुराल की किसी वयोवृद्ध औरत के साथ कभी कभार आती-जाती दिखाई पड जाती या फिर कभी अपने पति के साथ ताँगे मे बैठकर ससुराल से पीहर, पीहर से ससुराल जाते हुए । दूर से ही नजर-दर्शन होते थ । न नजदीक जाकर वार्तालाप सम्भव था, न रुककर एक दूसरे के हालचाल पूछना । वैसे हालचाल थे भी क्या । चन्दा के हाल मैं देख ही रहा था अपने ससुराल मे थी, पति के पास थी, स्पष्ट है सुखी ही होगी । उसका पति भी देखने मे भला मनुष्य ही लगता था ।

मुझे चन्दा की तरफ से तनिक भी चिन्ता करने की जरूरत नही रह गई थी । मेरी बाल-सखी सुख से अपना विवाहित जीवन व्यतीत कर रही है, यह मेरे लिए परम सन्तुष्टि की बात थी । मैं दभी था, यह सच है, किन्तु वह दूसरे अर्थों मे । चन्दा के ववाहिक जीवन मे मेरा दभ घुसकर उसे आन्दोलित नही करना चाहता था । धीरे-धीरे स्थिति मे इतना परिवर्तन आ चुका था कि मैं चन्दा को उसके पति के साथ ताँगे मे बैठे हुए देख भी लेता तो बजाय साइकिल पीछे-पीछे दौडाने के, साइकिल को इधर-उधर घुमाकर या चैन खुलने का झूठा बहाना बना कर, साइकिल रोककर खड हो जाना ज्यादा उचित समझता । इसके पीछ मेरा बहुत ही साफ प्रयोजन था ।

मैं जब-जब भी चन्दा के पीछे साइकिल दौडा कर चला हूँ न तो वह मुझे दिल खोलकर देख ही सकती थी, न देखने से बाज ही आ सकती थी। मेरे से ज्यादा असमजस की स्थिति उस समय चन्दा की हो जाती थी। किसी के जीवन मे यदि नही आ सको तो वहाँ तूफान खडा करने से कोई फायदा नही हो सकता है। यही सोचकर मैंने रास्ता बदलने का ही सामयिक निणय ले लिया था। मेरी बाल-सहेली सुखी है। वैवाहिक-जीवन से सुखी है, यह मेरी सबसे बडी खुशी थी और यही कारण था कि मैं धीरे-धीरे चन्दा से दूर हट कर, काजल के निकट आने लगा था।

महाशय, चन्दा की कहानी यही छोड दीजिए, कहानी वसे ही बहुत लम्बी होती जा रही जा रही है। अन्तर केवल अवस्था का ही है। कहानी काजल की भी इस कहानी से ज्यादा सम्बन्ध नही रखती है परन्तु इसके बिना आप आगे की कहानी नही समझ पायेंगे। आगे की कहानी नही समझ पायेंगे याने आप कैशौय से यौवन की तरफ बढते कदमो की कहानी नही समझ पायेंगे। यह नही समझ पायेगे तो इस पत्र की कहानी भी नहीं समझ पायेंगे, जो इस समय मेरे हाथ मे पडा हुआ है।

चौंकिये नही महाशय काजल नाम से हो क्या होता है। नाम बहुत बार साथक नही होता। हिन्दुओ मे बहुत-सी जगह ऐसी परम्परा है कि किसी खूबसूरत चीज पर काला चिह्न लगा देते हैं, काजल का चिह्न, ताकि उसे किसी की बुरी नजर न लगे। काजल के माँ-बाप ने भी शायद यही सोचा होगा। उन्होने काजल नाम शायद इसलिए रख लिया होगा कि उनकी दूध सी काया वाली बेटी पर किसी की बुरी नजर न लगे। काजल

एकदम गोरी चिट्टी लम्बी लडकी थी। सारस की सी गर्दन थी उसकी। दुबली और इकहरे बदन वाली काजल। घुटनों तक लम्बे बाल। पहले पहल काजल से मेरी मुलाकात किसी कमजोर क्षणो मे कालेज प्रागण मे ही हुई थी। नाम से आप जान ही गये होंगे, काजल किसी बगाली माँ-बाप की बेटी थी।

उसके पिता हमारे उस शहर के एक पशु-चिकित्सालय मे पशु-चिकित्सक थे, यही कारण था कि काजल सुदूर बगाल की हरियाली और मोहक धरती को छोडकर इस रेतीले प्रदेश के एक छोटे से शहर मे पडी थी। इस छोटे से कालेज मे पढ रही थी। बगाली परिवारो मे काजल नाम बहुत प्यारा माना जाता है, यह बात भी मुझे काजल ने ही एक दिन बताई थी।

मैं आपको शुरू मे बता ही चुका हूँ महाशय, सौन्दर्य एक सापेक्ष वस्तु होती है, निरपेक्ष नहीं। यदि सापेक्ष वस्तु नही होती तो मैं आज भी काजल से मुलाकात होने के बाद भी, चन्दा को ही सबसे सुन्दर मानता, किन्तु काजल को देखने के बाद मेरा मोह भग हो चुका था। ऋषि विश्वामित्र के दिल पर उस हरे-भरे कानन मे, वसन्त ऋतु मे जो स्थिति मेनका को देखकर गुजरी थी वैसी ही मेरे दिल पर कालेज-प्रागण मे सहेलियो के झुण्ड मे खडी काजल को देखकर गुजरी थी। सम्मोहन दोनो का समान ही था।

विश्वामित्र ऋषि थे, मेनका इन्द्र की अप्सरा, इसलिए उनकी कथा जग-जाहिर हो गई। प्रचार भी पा गई। मैं एक साधारण ससारी था, काजल इसी धरती की बेटी थी, इसलिए हमारे सम्मोहन को हम दोनो के अलावा कालेज वाले बहुत दिनो बाद जान पाये थे। वह भी टुकडो-टुकडो मे, एक-एक कर। जब सम्मोहन की

यह कहानी कालेज मे फैली तब तक हमारी परीक्षा-पूर्व की छुट्टिया घोषित हो चुकी थी। बाल-सहेली चन्दा के साथ मेरे प्यार की साक्षी मेरे उस गाँव की गलिया थी, वह तालाब था, जहा हम साथ-साथ स्नान करने जाते थे। साथ-साथ बरसात मे भीगते थे। किशोरमना काजल के साथ मेरे प्यार की साक्षी चन्दा के उस शहर की वह सुनसान व गली की सडक थी, जिस पर चलकर मैं और काजल अक्सर साथ-साथ कालेज पहुँचते थे, साथ साथ कालेज से लौटते थे।

कालेज-प्रागण मे भी यह कहानी एक शीशम के पेड की हरियाली के नीचे आज भी दबी पडी है जिस दिन काजल ने मुझे पहला-पहला और आखरी पत्र लिख कर दिया था और मैंने दूसरे दिन प्रत्युत्तर मे काजल को वही उस शीशम के वृक्ष की हरियाली के नीचे एक पत्र दिया था। मेरी ओर से पहला और आखरी पत्र काजल के नाम, लेकिन उस पत्र का इस पत्र से लेशमात्र भी सम्बन्ध नही है जो इस समय मेरे हाथ मे पडा हुआ है और जिसकी कहानी मैं आपको सुनाने जा रहा हूँ। न ही यह पत्र काजल का लिखा हुआ है।

हमारी परीक्षाएँ हुई। परिणाम भी आ गये। मैं भी उत्तीण हो गया था और काजल भी। इस बीच काजल के साथ मेरा परिचय और भी प्रगाढ हो गया था। दोनो के दिल मे एक दूसरे के लिए जगह बन चुकी थी। जिस तरह काजल की याद मे मैं रात रात भर सो नही पाता था, कालेज समय से पहले पहुँच जाता था, उसी तरह ठीक उसी तरह निश्चय ही काजल को भी रात-रात भर नीद नही आती थी। यह बात मुझमे काजल ने कभी नही कही थी, किन्तु मैं निश्चयपूर्वक यह कह

सकता हूँ कि ऐसा होता था, अवश्य ही होता था। इस बात का सबूत काजल का चेहरा था, उसकी मछली-सी दो आँखें थी।

जब भी काजल की एव मेरी आँखें मिलती, रात के जागने का भेद स्वत खुल जाता। अगर कोई फेसरीडर हो तो मेरी इस बात को जरूर मान जाएगा कि व्यक्ति की वाणी के माध्यम से की गई अभिव्यक्ति से आँखो के माध्यम से की गई भावो की अभिव्यक्ति कई गुना ज्यादा होती है। काजल की आँखें इसका अकाट्य प्रमाण थी। कहने को तो मैं काजल के बारे मे बहुत कुछ और भी बता सकता हूँ, किन्तु इतना समय भी तो नही रहा है। रात थोडी ही शेष है। सुबह होने ही वाली है। तब तक काजल की कहानी पूर्ण कर, मुझे आपको मेरी पत्नी की कहानी सुनानी पडेगी। पत्नी की कहानी सुने बिना इस पत्र की कहानी आप कभी भी नही समझ सकेंगे, जो इस समय भी मेरे हाथ मे ही पडा हुआ है महाशय।

वैसे काजल की कहानी तो यही समाप्त कर देता, किन्तु एक बात कहे बिना यह कहानी सार्थक नही होगी। काजल जैसी खूबसूरत किशोरी मैंने दूसरी नही देखी थी, जब वह पूर्ण युवती हुई होगी, उसका यौवन एव रूप सौन्दर्य पानी मे आग लगाने वाला रहा होगा। रहा होगा, इसलिए कह रहा हूँ कि उसके बाद मैं काजल को आज तक नही देख पाया।

किशोरावस्था का प्यार भी क्या चीज होता है महाशय, सुबह की पहली किरण सा ताजा, पवन के पहले झोंके-सा शीतल, चन्द्रमा के प्रकाश सा प्यारा-प्यारा, बालक की किलकारी सा कर्णप्रिय गुलाब की पहली पखुडी-सा नरम, हृदय की धडकन-सा लयबद्ध, सगीतकार की रागिनी के पहले स्वर-सा, न भुला देने वाला, कभी न भुला देने वाला। कच्ची उम्र का प्यार

आदमी को भेंट की हुई ईश्वर की अनमोल भेंट है। काजल का प्यार आज भी मेरे मन मे पवित्रता लिये बसा हुआ है।

मैं आपको पूरा जोर देकर कह सकता हूँ, पूर्ण आत्मविश्वास के साथ कह सकता हूँ मेरे और काजल के प्यार में उस समय वासना किंचित् मात्र भी नही थी और आज, आज तो होने का प्रश्न ही नही उठता है। मैं ठहरा एक आश्रम का सन्यासी जिसके लिए औरत को प्यार करना त्याज्य है और इतनी स्थिति तक पहुँचने के लिए इसकी तरफ लौटकर देखना भी बडा अटपटा लगता है।

काजल के पिताजी सेवानिवृत्त हो गए थे। वे यहाँ से अपने पूरे परिवार के साथ बगाल के मुर्शिदाबाद जिले के एक देहात मे चले गये थे। जहा उनका पैतृक मकान था, थोडी-सी खेती की जमीन थी। यह मुझे काजल ने उन्ही दिनो बतला दिया था जब हम परीक्षा की तैयारियो के बीच कभी-कभी एक दूसरे से लाइब्रेरी मे मिल लेते थे। वरना तो मैंने पढाई छोडने के बाद बहुत प्रयत्न किया था कि मुर्शिदाबाद जाकर काजल को तलाश करूँ। मैंने उस भोली हिरनी-सी लडकी का जीवन मे जितना इन्तजार किया, उतना इन्तजार किसी का बहुत कम लोग कर पाते हैं।

काजल को ढूँढने के लिए पता नही मैं मुर्शिदाबाद जिले के कितने गाँवो मे घूमा हूँ। कितने आमो के बगीचों मे मैं उसके स्पर्श और प्यार की महक खोजता फिरा हूँ, प्यासे हिरन की तरह, गाँव गाँव के पोखर पर कुलाचे लगाई हैं, किन्तु काजल को नही मिलना था, नही मिली। यदि इन सब बातो का मैं आपको पूरा हिसाब बताने लगूँ तो यह अपने आप मे एक

दूसरी कहानी बन जाएगी। पता नही इस समय कहाँ होगी काजल, क्या कर रही होगी वह, कितने बच्चो की माँ बन चुकी होगी, माँ ही क्यो, मेरी ही उम्र कौन-सी कम रह गई है।

उम्र का हिसाब लग,ये तो अब तक काजल नानी या दादी भी तो बन सकती है और आज अगर जीवन के किसी मोड पर बस या ट्रेन मे सफर करते, काजल से मुलाकात हो भी जाए तो न तो हम एक दूसरे को आसानी से पहचान ही पायेंगे और काफी प्रयास के बाद जब पहचान ही लेंगे तो एक फीकी हँसी हँसकर अपने गोद मे लदे बच्चे को जो उसका पोता भी हो सकता है, दुहिता भी सीने से चिपटाकर वह मेरी तरफ देखकर पूछ भर लेगी "अरे आप ! सोचा भी नही था उम्र के इस मोड पर कभी इस तरह मिलेंगे।" और तब तक उसकी या मेरी गाडी सीटी दे चुकी होगी। ये सब रागद्वेष यही आकर समाप्त हो गये हैं। अगर जिन्दगी को यों ही चलना होता, जैसा कि मैं चलाना चाहता था तो न तो काजल मुर्शिदाबाद जाती, न मैं जयपुर से एक दिन चलकर इस आश्रम तक पहुँचता, न मेरी पत्नी से मेरी शादी होती और न यह पत्र मेरे हाथ मे होता और न यह कहानी इस तरह से रात के गहन सन्नाटे मे आपको सुननी पडती।

समय बहुत बलवान् है महाशय और गतिशील भी। समय-चक्र चलता ही रहता है, न यह आदमी के रोके रुकता है, न देवता के। इसे जो कुछ करना होता है, करके रहता है। जो जिसके भाग्य मे होता है, उसे वही मिलता है। बाल-सहेली चन्दा भी मेरे जीवन से जा चुकी थी और किशोरी-प्रेमिका काजल भी। उन दोनो के चले जाने का अन्तर केवल एक ही था। चन्दा

को मैंने उसकी शादी के वाद भी देखा है और मेरी शादी के वाद भी, किन्तु काजल को एक वार खोने के वाद मैं आज तक दुबारा नही देख सका हूँ, उसको खोने के वाद मैंने हजारो लडकियो मे उसके अस्तित्व को खोजा है, खोजता ही रहा हूँ, खोजता ही रहा हूँ। इस आश्रम मे आने से पहले तक अविरल खोजता ही रहा हूँ।

उस अनन्त खोज की मेरी ऐसी वहुत सी रात साक्षी है जो मैंने काजल की याद मे जागकर गुजारी है। वगाल की धरती पर जब मैं बच्चो के साथ गाइड बनकर छुट्टियो मे दो माह के लिए कलकत्ता गया था, उस समय मैंने गली-गली मे, सडक के हर नुक्कड पर, चलती हुई ट्राम मे, भागती हुई वस म, दौडती हुई कार मे, रेगते हुए रिक्शे मे, फुटपाथ की पैदल चलती भीड मे, विश्वविद्यालय के छात्राओ के हुजुम मे, सिनेमा की सीटो पर, हुगली मे तैरती नावो पर, वहुमजिले मकानो की खुलती और वन्द होती खिडकियो पर, विक्टोरिया मेमोरियल के लान पर, धमतल्ला के क्लवो मे, रिजर्व वैंक की सीढियो पर, नेशनल लाइब्रेरी मे, रवीन्द्र सरोवर पर, महाजाति सदन म, पार्क स्ट्रीट के रेस्तराओ मे सचिवालय मे, कहाँ कहाँ नही खोजा है मैंने काजल का, किन्तु फिर भी क्या मैं उसको पा सका हूँ ? निश्चय ही नही।

चन्दा मेरे जीवन मे आने वाली पहली लडकी थी, जिसने मुझे सौंदर्य-वोध का पहला पाठ पढाया था। काजल ने उस सौंदर्य-वोध को परिपक्वता दी थी, किन्तु पूर्णता दोनो से ही नहीं मिल पाई थी। उसी पूर्णता के लिए मैं वर्षो-वर्ष भटकता रहा। मुझे हर वगाल की लडकी मे काजल ही काजल दिखाई

पडती थी। यह एक दूसरी ग्रन्थि थी, जिसने जीवन मे आगे जाकर समस्या खडी कर दी थी मेरे जीवन मे। जागृत अवस्था मे व्यक्ति जिस वस्तु को प्राप्त नही कर सकता है, बहुत बार वही वस्तु सपनों में उसे मिल जाती है, किन्तु यदि व्यक्ति किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिए हर रात सपने लेने लग जाय तो जागृत अवस्था मे उसे अनायास प्राप्य नही मिल सकता है। यह एक सच्चाई है। मन अपनी जिद करने लग जाता है। मन की जिद कई बार अनर्थ का कारण बन जाती है। बहुत बड अनथ का कारण बन जाती है।

चन्दा मेरी शादी के बाद मुझे कब व कहाँ मिली। यह बताना प्रासगिक नही है, किन्तु मेरी शादी कब हुई यह बताना अपेक्षित होगा। तभी आप आगे मेरे मन की जिद की कहानी सुन पायेंगे। उस कहानी को सुने बिना आप मेरी पत्नी की कहानी भी नही सुन पायेंगे। मेरी पत्नी की कहानी नही सुन पायेगे तो फिर आप पूजा की कहानी भी नही सुन पायेंगे और पूजा की कहानी नही सुन पायेंगे तो इस पत्र की कहानी भी नही सुन पायेंगे, जो इस समय भी मेरे हाथ मे पडा हुआ है।

सन्यासी मन मोहासक्त नही होता महाशय, किन्तु यह कहानी आप किसी सन्यासी जीवन की नही सुन रहे है। यह कहानी इस सन्यासी के अतीत की है, जहाँ उसका बचपन है, कैशोर्य है, यौवन है। वीतराग होने के बाद सपने भी सफेद ही आते हैं। यह तो यौवन की ही कृपा होती है जो सपना भी आँखो मे भी सातो रग भर देता है। आज मेरे मन मे न चन्दा के लिए आग्रह है, न काजल के लिए अनुनय। ये सब बहुत पुरानी बातें हो चुकी हैं। इनको दुहराने का मेरा अन्य कोई अभिप्राय

नी नहीं है, जो कुछ भी अभिप्राय है, बहुत साफ है। इस कहानी सुनाने के लिए ये सब कहानी आपको सुना रहीं हैं।

जो कल बच्चे थे, वो आज युवा हो गए है, जो आज है, वे कल प्रौढ हो जायेंगे। काल गति अविरल चलती है। दिन मे भी, रात मे भी, सोते भी, जागते भी, का विश्राम नही लेता। वह सरकता ही रहता है। इसी सरक के साथ आदमी की उम्र भी सरकती रहती है। आद काल गति के साथ नये को अपनाता, है तो पुराने को f जाता है। यही काल-क्रम है। यही समय चक्र है।

आदमी वांछित वस्तु को पा नही सकता तो ध उसे अप्राप्य घोषित कर बिसूरना शुरू कर देता है, वि क्रम सदा समान नही रहता। इसमे बहुत से अपवाद f हैं। जीवन के बहुत से क्षण कुछ इस तरह ज जाते हैं, जिन्हे भुला पाना न सम्भव होता है, न अभीप्स व्यक्ति धीरे-धीरे सब कुछ भूल जाने की स्थिति मे ह न तो आप यह कहानी सुनने के लिए यहाँ होते, न यह सुनाने मैं आपके सामने इस ढलती रात मे इस अ जाग रहा होता।

काजल मेरी आँखो से ओझल अवश्य हो ग किन्तु मन से ओझल होने का नाम ही नही ले रही मैंने आपको बताया न कच्ची उम्र का प्यार होता ही महाशय। कच्ची उम्र का प्यार और बुढापे की सम मनुष्य-जीवन की अमूल्य निधि होती है। यदि यह प्यार आदमी की झोली मे एक बार गिर गया तो जीवन भर व

नही होगी। आखिरी साँस तक झोली भरी ही रहेगी। उसे लुटाते लुटाते आपके हाथ थक जायेंगे, प्यार नही घटेगा।

जवानी कमाने के लिए होती है, बुढापा जिम्मेदारियाँ पूरी करने के लिए होता हे। कच्ची उम्र ही एक उम्र होती है जिसमे आदमी किसी को भरपूर प्यार कर सकता है, भरपूर प्यार दे सकता है, भरपूर प्यार ले सकता है। स्त्री, पुरुष की जवानी मे सह-कर्मिणी हो सकती है, बुढापा मे सह धर्मिणी। स्त्री का पुरुष के प्रति सखी-भाव तो केवल कच्ची उम्र मे ही सम्भव है जिसे हम टीने-एजस की स्थिति कहते है, किशोरावस्था कह सकते हैं और महाशय जिस व्यक्ति ने कच्ची उम्र मे प्यार नही किया, उसने सचमुच मे प्यार किया ही नही। उसका प्यार अधूरा ही माना जाएगा। प्यार मे कैसी समझदारी, कैसी प्रौढता और कैसी दुनियादारी और यही प्रेमिका और पत्नी का सघर्ष शुरू होता है। भेदभाव शुरु होता है।

आप वैदिक काल से अब तक का इतिहास उठाकर देख लीजिए। यह सघर्ष हर युग मे विद्यमान रहा है, शायद है, आगे भी बना ही रहेगा। न तो हर प्रेमिका पत्नी बन सकती है और न हर पत्नी प्रेमिका ही। यद्यपि पत्नी की स्थिति इन दोनो स्थितियो मे कुछ ज्यादा ही मजबूत होती है, कारण, हर पत्नी को अभिनय करने की छूट है, ऐसा अभिनय जिसे समाज भी मान्यता देता है। प्रेमिका पत्नी का अभिनय नही कर सकती, क्योकि हमारे समाज की आचार-सहिता उसे ऐसा करने की छूट नही देती, किन्तु पत्नी चाहे तो वह प्रेमिका का अभिनय बहुत आसानी से कर सकती है उसमे किसी प्रकार की आचार-सहिता आड नही आती और जिन पत्नियो ने प्रेमिका का अभिनय भी

किया है, उनका दाम्पत्य-जीवन सवसुखी रहा है। जो पत्नी यह अभिनय नही कर सकती, उसका गृहस्थ जीवन कितना ही सफल क्यों न हो जाए दाम्पत्य जीवन सुख के चरम को प्राप्त नही कर सकता है।

सुख, दुख, प्रम, घृणा मानव-मन की स्थितियाँ हैं, जिससे छुटकारा वीतराग व्यक्ति ही पा सकता है। लगता है फिर दूसरी बार विषयान्तर हो रहा है महाशय, लेकिन किया ही क्या जा सकता है। मैं आपको किसी काल्पनिक पात्र पात्रों की कहानी तो सुना नही रहा, जिसे जितना चाहे घटाया-बढाया जा सके। जीवन्त कहानी अपने आकार जीवन से ग्रहण करती है। सच्ची कहानी मे काँट छाँट त्याज्य है। धीरे-धीरे आसमान और गहराता जा रहा है। लगता है आज की रात बरसने के लिए ही बनी है। सुबह तक यह बरसात न जाने कितने कमजोर मकानो की नीवें हिला देंगी, लेकिन उस सुबह होने के पहले-पहले मुझे यह कहानी आपको सुना ही देनी है। आप चाहे तो भी, न चाहे तो भी।

मैं जानता हूँ आपको इस पत्र की कहानी सुने बिना चैन नही पड सकता और इस पत्र की कहानी जानने के लिए आपको मेरी कहानी सुननी ही पडेगी। मेरी कहानी माने बाबा मुक्तिनाथ की कहानी नही। वह तो आप बहुत कुछ सुन चुके। बीच बीच मे आवश्यकता हुई तो और सुन लेंगे। इस समय मेरी कहानी के माने है, यादवेन्द्र की कहानी। तरुण यादवेन्द्र की कहानी। यादवेन्द्र की पत्नी की कहानी, माने आरती यादवेन्द्र की कहानी।

आरती एक सास्कारिक एव क्रियाशील नाम है। बहुत ही प्यारा, बहुत ही श्रद्धालु। आरती मेरी पत्नी थी। आरती मेरी सब कुछ थी। आरती मेरे जीवन मे लाई गई तीसरी लडकी थी। लाई गई इसलिए कह रहा हूँ कि आरती उन अन्य दो की तरह स्वय नही आई, बल्कि मेरे घरवालो ने आरती को मेरे जीवन मे लाकर खडा कर दिया। यहाँ तक इसमे कुछ भी अटपटा नही लगा। ऐसा होता रहता है बहुत लोगो के साथ होता ही रहता है। आवारा झरना जब अपना प्रवाह स्वच्छन्द कर लेता है तो उसके प्रवाह मे गतिरोध उत्पन्न करने के लिए उसे एक निश्चित दिशा दे दी जाती है। मेरे और काजल के सम्बन्ध कालेज की चारदीवारी को छोड चुके थे। मेरी मन स्थिति घर वालो ने समझ ली थी या उन्हे किसी के द्वारा समझा दी गई थी। मेरे काफी कुछ प्रतिरोध के बावजूद भी मेरी शादी आरती के साथ कर दी गई। मैंने निजी तौर पर आरती को न चाहा हो, सो बात भी नही थी किन्तु आरती के प्रति मेरा विरोध काजल के न पा सकने की खीझ का परिणाम था और ऐसी स्थिति मे आरती क्या, कोई भी लडकी मेरे जीवन मे आ टपकती तो वह आरती ही होती। समस्या दोहरी थी। विरोध भी एक सीमा तक ही कर सका था। काजल का अता-पता नही होने से उसे पाना एक दिवा-स्वप्न बनकर रह गया था। मैं प्यार का जुआ हार चुका था। हारे हुए जुआरी ने न मालूम कितनी बार द्रौपदी को चीर-हरण के लिए भरी सभा मे खडा कर दिया है।

एम एस-सी की डिग्री लेकर जिस वर्ष गर्मियो मे मैं शहर से घर लौटा, घरवालो ने एक साथ मुझे घर लिया। अब शादी हो ही जानी चाहिए। मैं भी आखिर कब तक विरोध करता और

करता भी तो किस आधार पर ? मेरा विरोध धूप मे रखी हुई बफ की तरह पिघल कर बह रहा था। बफ का जब आखिरी टुकड़ा बचा तो मैंने अपने अस्तित्व एव अस्मिता का सही सला मत रखने के लिए घरवालो को यह स्वीकृति दे ही दी कि मेरी शादी आरती से की जा सकती है।

आरती एक साधारण रग रूप की लडकी थी। सस्कार-शील साधारण पढी लिखी औसत श्रणी की लडकी। वह भावुक कम और कमठ ज्यादा थी। मैंने आरती जैसी समझदार लडकी अपने जीवन मे बहुत ही कम देखी है और मैंने पहली रात ही आरती से मिलने के बाद मान लिया था कि आत्मा का जन्म दर जन्म विकास होता रहता है। एक स्थिति पूण विकास की आती है, जिसे हम सन्यासी की भाषा म मोक्ष कहते है, आधुनिक बुद्धि-जीवी की भाषा मे पूणता। आरती जैसी 17 साल की लडकी मे इतनी समझदारी व जिम्मेदारी साधारणतया इतनी उम्र मे नही ही आ पाती है।

यह उम्र होती ही सपने देखने के लिए है। भगवान जाने आरती कभी सपने देखती भी थी या नही। उसे रोमास मे कम और पति मे ज्यादा विश्वास था। मै शुरू से ही भावुक व्यक्ति रहा हूँ। कुछ अतिभावुक भी कह सकते है। शादी के बाद भी इस अति-शय भावुकता के कारण म काजल का अपने हृदय से पूणतया निकाल नही पाया था। मैं आरती मे एक दूसरी काजल को खोजता रहा या कहना चाहिए खोजने का प्रयास करता रहा। अत मे मैं ही हारा जीत आरती की हुई, किन्तु इसी हार-जीत ने मेरे जीवन मे इतना बडा अनथ घटित कर दिया जिसकी मैने कल्पना तक नही की थी। आरती हमेशा से ही दूरदर्शी रही

है, उसने भाप भी लिया हो तो पता नहीं । प्रकट उसने भी कभी नहीं होने दिया ।

वैसे तो हर व्यक्ति ही कमोबेश मात्रा मे भावुक होता है, किन्तु भावुकता सब की समान नहीं होती । इसकी किस्म भी भिन्न-भिन्न हो सकती है । आरती भी भावुक थी, किन्तु उसकी भावुकता व्यावहारिक ढग की थी, वह जितनी चिन्ता मेरे अकेलेपन को अपनी उपस्थिति से भरने की करती उतनी ही चिन्ता रसोई-घर मे दाल सब्जी बनाती क्षण-क्षण बूढी होती मेरी माँ की जिम्मेदारियो को कम करने की भी करती थी ।

शादी के पाँच-सात दिन बाद ही दमा की मरीज मेरी माँ की स्थिति आरती ने स्वत ही समझ ली थी और उम्र के उस मोड पर जब यौवन क्षण-प्रतिक्षण पूर्णता की ओर कदम बढाने मे, विकसित होने मे रात-दिन लगा रहता है, आरती ने चपचाप बुढापा ओढने की शुरुआत रसोई घर से शुरु कर दी थी । यह सब समझने की बात भी नहीं थी । स्वत समझ सर्वश्रेष्ठ समझ होती है । सन्यासी के लिए जो चीज आत्मज्ञान होती है गृहस्थ के लिए सूझबूझ कुछ-कुछ ऐसी ही वस्तु होती है । एक सन्यासी के लिए जो महत्त्व उसकी एकान्त तपस्या और कठोर साधना का है, वही महत्त्व एक सद-गृहस्थ के लिए अपनी जिम्मेदारिया को पूर्णत समझ लेने और उन्हे यथासम्भव निभाने का है। जैसा कि मैं बता चुका हूँ, आरती शुरु से ही एक जिम्मेदार लडकी रही है और सच ही कहूँ तो आरती की इस जिम्मेदारी ने ही इस कहानी को जन्म दिया है । इस पत्र को जन्म दिया है, जो इस क्षण भी मेरे हाथ मे पडा हुआ है ।

युवावस्था मे हर युवक सपने बुनता है । म भी उसका अपवाद नहीं था । थोडी सी दौड-धूप करने के बाद तथा एक अदद

सिफारिश पहुँचाने के बाद मुझे अपने गाँव के पास एक स्थित हाईस्कूल मे अध्यापक की नौकरी मिल गई थी। एकदम कच्ची नौकरी। स्कूल प्राइवेट था। जब जी चाहे तब मुझे निकाल बाहर कर दिया जा सकता था। इसलिए अपने आपको स्थापित करने के लिए मेहनत भी ठीक ही करनी पडती थी। स्कूल भी गाँव से कोइ तीन किलोमीटर की दूरी पर था। स्कूल क्या था तीन गाँवो की सम्मिलित नाक थी। ठीक तीन गाँवो के बीच मे स्थापित आसपास के काफी छात्र अध्ययन करने जाते थे। मेरे गाँव के कुछ लडके भी इसी स्कूल मे विद्यार्थी थे, लेकिन मुझे स्कूल समय से भी आधा घण्टा पहले पहुँचना पडता था। बाद मे सही समय पर पहुँचने पर खतरा जो था। खतरा स्कूल की तरफ से नही था, बल्कि जो विद्यार्थी मेरे गाव से आते थे, उनसे था।

पिछले दो दशको मे तो जमाना कहाँ से कहाँ पहुँच गया है महाशय, सोचा भी नही जा सकता। विशेषकर शिक्षा के क्षत्र मे। अब तो स्थिति यहा तक पहुँच गई है, कि कालेज के विद्यार्थी सिगरेट सुलगाने के लिए दियासलाई भी अपने प्राध्यापक से मागने से नही चूकते और प्राध्यापक भी गौरवान्वित होकर देते है। खैर नैतिकता के मापदण्ड हर युग के अपने अलग रहें है और बीडी-सिगरेट पीने या न पीने से न तो किसी देश या जाति की नैतिकता को आँच आती है और ना ही दियासलाई दे देने से अध्यापक का कोई सम्मान ही कम होता है। नैतिकता और नैतिक मूल्य सामाजिक मूल्यो के साथ बदलते रहते है।

परिवर्तन मनुष्य की प्रकृति है महाशय, इसे रोका नही जा सकता। जड और चेतन का मूल अतर भी यही है। शब्द-जजाल मे कुछ भी कह दें। बात यह बतला रहा था कि उस समय

स्कूल के लडको के साथ साथ गाँव से स्कूल जाने मे मुझे सकोच होता था।

अध्यापक लडका से अलग थलग रहना चाहता था। यही उस समय की स्थिति थी। लडका की भी अध्यापक के साथ आँख मिलाने की हिम्मत नही होती थी। यही कारण था कि मै लडको के पहुँचने के आधा घण्टा पूर्व ही स्कूल पहुँच जाता था और स्कूल-समय समाप्त होन के आधा घण्टे बाद वहाँ से चलता था। नितान्त अकेला।

कभी कभी कोई सहयात्री मिल जाता तो घुटन ही होती, प्रसन्नता की बजाय। एक तो मेरे अध्यापक के रोबदाब पर आघात लगता, दूसरा मैं ज्यादा बातचीत करने का आदी भी नही था। आखिर कोई देहाती रास्ते मे आपमे बात भी क्या करेगा। यही अनाज के भावो के उतार-चढाव की बात, फसल की बात, गाय-बैलो की बात, शरीर मे माँ-बाप के हो रहे गठिया के दर्द के देशी नुस्खो की बात। इन सबसे मुझे वैसे ही खीझ थी। मैने जन्म हो देहात मे लिया था, मानसिकता मेरी पूरी शहरी थी। शत-प्रतिशत शहरी। ग्राम्य-परिवेश उस समय मुझे किताबो मे ही अच्छा लगता था।

बचपन से ही मैंने शहर के सपने पालने शुरु कर दिये थे। मेरी कल्पना की पत्नी एकदम शहरी थी। एकदम शहरी। आधुनिक विचारो वाली फटाफट हिन्दी और अग्रेजी मे बातचीत करने वाली, सैण्डिल पहनने वाली, फिल्मी स्टाइल से प्यार करने वाली, शेक्सपियर, न्यूटन राकफेलर और फ्रायड पर चर्चा करने वाली। खूबसूरत हँसमुख वगैरह वगैरह, कितु मुझे मिला क्या महाशय ? एकदम ठीक इसके विपरीत आपनी एक साधारण नाक-नक्श की साधारण लडकी जो शेक्सपियर, न्यटन, राक-

फेलर एव फ्रायड को समझने के बजाय चूल्हा, चौका, सत और अपनी कुवारी ननद तथा बीमार सास को अधिक समझने मे लगी हुई थी। मैं कल्पनाजीवी था।

आरती निहायत व्यावहारिक। पाँव मे चोट लगती है तो सिर को सहलाने से कोई फायदा नही होता। उसके जीवन का दशन यही था। जीवन से जुडी समस्याओ से निपटने का उसका यही अन्दाज था। वह अपनी जगह कामयाब थी, अगर आरती कही नाकामयाब रही तो केवल एक ही जगह कि वह मेरे समान कल्पनाओ मे नही जी सकी और यही अनर्थ हो गया महाशय। मेरे पढ-लिखे मन ने कभी सोचा भी नही था कि एक मामूली-सी दरार कोई एक दिन पूर बन्धन को तोड देगी। सचित जलधारा एक ही झटके म बालू म मिल जायेगी। दुनिया के बहुत से अनथ इसी नासमझो के कारण हो जाते है, जैसी मेरी थी। उसी की कहानी आपको सुना रहा हूँ महाशय। अगर उसकी कहानी समझ मे आ जायेगी तो इस पत्र की कहानी भी आपके समझ मे आ जायेगी, जो इस समय मेरे हाथ मे पडा हुआ है।

स्कूल से थका मादा घर लौटता तो राजश्वरी एक प्याली चाय लाकर पकडा जाती। वह मुझ से कम बोलती थी अपनी भाभी से ज्यादा। आदमी के क्या हो जाता है, महाशय! जो मेरे बाद मेरे घर मे मेरी माँ की कोख से पैदा हुई मेरी मा ने जिसे पाला पोसा, उस लडकी की जवान होती पीडा को मुझ से और मेरी माँ से कही ज्यादा आरती समझती थी। शायद इसकी वजह या तो दोनो के ही पूर्वजन्मो के कोई सस्कार हो सकते है, यदि आप पूवजन्म को मानते हो तब तो अन्यथा दोनो घरो की जवान होती बेटियो की समस्या करीब-करीब समान रही होगी।

समय का अन्तराल बहुत ही थोडा था। हर विवाहिता लडकी अपने आसपास के परिवेश की हर जवान कुवारी लडकी को विवाहिता देखना चाहती है। फिर राजेश्वरी आरती की सगी ननद थी और लगभग समवयस्क थी। शायद विवाह ही भारत मे नारी-जाति का मोक्ष है। कम से कम हमारी सामाजिक सुरक्षा की स्थिति तो यही कहती है। भले ही तर्क के लिए हम कुछ भी कहते जाएँ। कुछ भी कहने से किसी को रोका भी नही जा सकता।

लोग अपने आप को भी गालियाँ दे लेते है तो व्यवस्था को गाली देने वाले को रोक ही कौन सकता है। इच्छा होती कि राजेश्वरी की जगह आरती स्वय आकर मुझे स्कूल से लौटने पर चाय पिलाती। हम दोनो साथ साथ चाय पीते। गपशप करते। कमरे के बाहर गेट पर व खिडकियो पर अजन्ता प्रिन्ट का मोटा पर्दा लटकता रहता। शाम को खाने मे क्या बनेगा, यह पूछने के लिए नौकर कमरे मे घुसता और हम दोनो झट से एक दूसरे से अलग होते हुए नौकर को डाटते कि बदतमीज कही का? अन्दर आने की शऊर तक नही है। इतना भी नही जानता जगली कि अन्दर आने से पहले साहब और मेमसाहब से इजाजत लेनी पडती है।

लेकिन न तो यहाँ कोई साहब था, न मेमसाहब, न नौकर और ना ही ऐसा कमरा जिसके कोई पर्दा लटकाया जा सके। यहाँ तो मैं था, राजेश्वरी थी, टूटे किवाडो का कमरा था जिसके एक कोने मे खटिया पर मेरी दमा की मरीज माँ थी, जिसका थूकपात्र उसकी खटिया के नीचे ही लगा रहता। सामने रसोईनुमा छप्पर मे आरती थी। मैंने कहा था उस समय मुझे सपनो

मे जोना बहुत अच्छी तरह से आ गया था। आरती ने सपनो को छोडकर जीना सीख लिया था।

आरती, राजेश्वरी के लिए प्यारी भाभी थी, मेरे लिए पत्नी थी तो मेरी माँ के लिए वहू भी थी और रात-दिन सेवा करने वाली नर्स भी। माँ को दमा शुरू होने पर पथ्य मे क्या दिया जाना चाहिए, क्या दवा देनी चाहिए, कितनी बार देनी चाहिए कब दवा बदलनी चाहिए। इन सब बातो की जितनी जानकारी मुझे 21 वर्षो मे नही हो पाई, उसे आरती ने 21 दिन मे सीख लिया था।

परिस्थिति की मजबूरी देखिए महाशय, जिस नव विवाहिता को अपने घर के कमरे की आलमारी मे अपना शृ गार-साधन रखना चाहिए था वहाँ माँ की दवाइयो से आलमारी भरी पडी थी। सैन्ट, लैवेण्डर और पावडर की जगह एफ्रीड्रेक्स, जीत और परिटोन के सिरप मिलते या कोई वैद्यजी का भेजा हुआ चूर्ण। हर दवा को आरती अपनी अगुलियो पर याद रखती। यदि उससे अधेरे मे भी किसी दवा को लाने के लिए कहा जाता तो वह वही दवा लाती, जो उस समय माँ को देनी होती। मेहन्दी से रचे हाथ या तो गोवर से लिपे रहते या आटा गूँधने मे व्यस्त रहते। राजेश्वरी बहुत डाँटती। भाभी दिन भर क्या काम, काम, काम कभी तो आराम किया करो।

चलो आज मैं तुम्हारे हाथो पर मेहदी रचाती हूँ तो उल्टी फटकार राजेश्वरी को ही पडती। राज, मेहन्दी तो मुझे तेरे हाथो पर रचानी है, जब तू ससुराल से वापस आये तो मेरे मेहन्दी रचाना। न उसका जवाब राज के पास था, न घर के किसी अन्य सदस्य के पास। राजेश्वरी इस पर भी आरती को

छेडती, भाभी शादी, शादी, शादी। क्या दिन भर शादी की रट लगाये रहती हो ? मैं तुझे अच्छी नही लगती ? इसीलिए तुम मुझे जल्द से जल्द घर से निकालना चाहती हो। इस पर आरती मुस्कुरा कर उसकी ओर देखती, बोलती कुछ नही। उस मुस्कुराहट का अर्थ या तो आरती समझती थी या राज। दोनो एक-दूसरे का राज जानती थी। सच कहूँ महाशय, मुझे उस समय राज से भी ईर्ष्या होने लगी थी। सोचता था कितनी किस्मत वाली है राज, जिसे भाभी का इतना प्यार मिल रहा है और मैं पति होकर भी आरती का उतना प्यार प्राप्त नही कर सकता, जितने की मुझे अपेक्षा है। अगर मेरा पढा लिखा नादान मन उस समय यह समझ लेता कि प्यार पाने के लिए, प्यार करना भी पडता है तो शायद यह अनर्थ नही होता।

जरूरी नही कि किताबो की भाषा समझने वाला जीवन की भाषा को भी ठीक-ठीक समझ सके। अगर ऐसा होता तो मैं आज आपको आरती की कहानी कभी नही सुनाता। आरती की कहानी नही सुनाता तो पूजा की कहानी नही सुनाता, पूजा की कहानी नही सुनाता तो इस पत्र की कहानी भी नही सुनाता, जो इस समय मेरे हाथ मे पडा हुआ है।

मुझे चिन्ता थी कि माँ का दमा ठीक नही हो रहा है। माँ को चिन्ता थी कि आरती के बच्चा नही हो रहा है। आरती को चिन्ता थी कि राजेश्वरी का विवाह नही हो रहा है और हम सब को सामहिक रूप से चिन्ता थी कि पिताजी किसी की भी चिन्ता नही कर रहे है। ये एक दूसरे की चिन्ताएँ मौन थी। कोई किसी को कुछ नही कहता था। सब अपनी-अपनी तरह से प्रयासो मे लगे हुए थे। मौन प्रयास। किसी एक दूसरे को भनक

तक नही । माँ का दमा ठीक करने के लिए मैं नई नई दवाइया लाकर आलमारी मे भर देता । आरती के बच्चे के लिए माँ चुप चाप बहाने बनाकर सप्ताह मे एक उपवास कर लेनी और राजेश्वरी के लिए दूल्हा की तलाश करने के लिए आरती भगवान से रोज सुबह मन्दिर मे जाकर प्राथना करती।

कुछ प्रयास ऐसे होते है जिनका परिणाम शीघ्र ही सामने आ जाता है। हम सबके प्रयास दीर्घकालीन प्रयास थे पचवर्षीय योजनाओ की तरह। अगर कोई काय इस योजना मे पूण नही हुआ तो उसे अगली पचवर्षीय योजना मे सम्मिलित कर दिया जाता है। ऐसा ही हमारे सामने विकल्प था और सब अपने-अपने प्रयास को इसी योजना मे पूरा करने मे मौन रूप से जुटे हुए थे।

मुझे राज ने एक दिन स्कूल से आते ही शिकायत की। बहुत पुरजोर शब्दो मे शिकायत की। भया आप कही दूर शहर मे जाकर नौकरी कर लीजिये। मैं समझ गया आज जरूर दाल मे कुछ काला है या तो आरती का माँ से झगडा हुआ है या स्वय राज से। इसीलिए राज ऐसा ताना मार रही है। मजा आ गया। वास्तव मे मजा आ गया था उस दिन। मैं जिस क्षण की प्रतीक्षा मे था, वह क्षण मेरे पास खडा था। मुश्किल से छू देने भर का फासला था, लेकिन कई बार बाल के अन्तर ने इतिहास बदल दिये हैं।

अगर उस क्षण को मैं उस दिन छू पाता तो आज यह कहानी बनती ही नही। आरती की कहानी आगे जाकर पूजा की कहानी और अन्त मे इस पत्र की कहानी। मैंने हजार बार प्रयत्न किये है, माँ के, राज के व आरती के आपस मे झगडा हो

जाये तो आरती का ध्यान घर-गृहस्थी से कुछ हट सकता है। फिर शायद वह प्रेम करना सीख सके, मेरे और नजदीक आ सके। लोग अपनी गृहस्थी मे तालमेल बिठाने के लिए शांति खोजने के प्रयास मे रहते है। मै इस प्रयत्न मे था कि किस प्रकार घर मे झगडा बढे, ताकि मैं आरती को अधिक से अधिक पा सकूँ। इसे आप मेरे अकेले की कमजोरी नही कह सकते। यह आदि-मानव की कमजोरी है।

सृष्टि के प्रारम्भ मे जब चारो तरफ जल ही जल था, सम्पूर्ण धरती जल-निमग्न थी। मनु ने अपनी दृष्टि फैलाई। श्रद्धा मे मिलन हुआ और जब दोनो के मिलन से तीसरे प्राणी के आगमन की सम्भावना उत्पन्न हुई तो ईर्ष्या उत्पन्न हो गई। मेरे सामने तो पूर्व स्थापित ईर्ष्या थी। ऐसे मौको की तलाश मे लगा ही रहता था। किसी स्त्री के लगातार सात बेटे हो जायें तो आठवी सन्तान यदि उसकी होगी तो सम्भावना पुत्र की ही ज्यादा होगी। यह भी एक ईश्वरीय नियम है। सम्भावनाओ मे नियति बहुत बार छिपी रहती है। जहाँ प्रेम ही प्रेम हो वहाँ लडाई के अवसर आकर भी निरर्थक ही चले जाते हैं।

मैंने राज से बहुत दुलार से पूछा 'क्या बात है राज मुझे दूर क्यो भेजना चाहती हो ? क्या भाभी से झगडा हो गया है।' नही भैया, भाभी बहुत परेशान करती है। दिनभर काम मे लगी रहती है, मुझे कुछ करने ही नही देती। जब ज्यादा जिद करती हूँ तो कहती है राज काम अपने मियाँ के घर जाकर करना। यहाँ तो खेलो, खाओ। बताओ भैया यह भी कोई बात हुई। अकेले-अकेले भाभी काम क्यो करें, इसलिए कह रही हूँ दूर कही नौकरी कर लो। भाभी को साथ रखोगे तो उसे

इतना काम तो नही करना पडगा। राज एक साँस में ही वह गई। धत् तेरे की, खोदा पहाड निकली चुहिया। यहाँ तो कोई लडाई-झगडे की उम्मीद लगाये बैठे थे और बात कुछ और ही निकली, लेकिन क्या आदमी को समझ इतनी जल्दी ही आती है। मै तो कहता हूँ महाशय, भावुक आदमी को कभी समझ आती ही नही। सफल दुनियादारो की भाषा मे वह बेवकूफ होता है। पूरी जिन्दगी जी लेने के बाद भी भावुक व्यक्ति उसका हिसाब नही लगा सकता, जबकि दुनियादार एक-एक दिन का हिसाब अपनी अगुलियो पर रखता है।

बेशक मैंने शादी कर ली थी, गृहस्थी भी पाल ली थी, लेकिन अनुभव का कोई विकल्प नही होता। मैं अनुभवहीन था, बहुत ही साफ शब्दो मे कहूँ तो अनाडी था। मैंने उस समय कल्पना भी नही की थी कि प्यार ऐसे भी हो सकता है। यह जरूरी नही है कि प्यार करने वाला जिसे प्यार करता है, उसे प्रत्यक्ष ही प्यार करे। कभी-कभी प्यार करने वाला, अपने प्रेमी के पास किसी माध्यम के सहारे ज्यादा सशक्त तरीके से प्यार निवेदित कर सकता है। वह माध्यम चाहे मध्यम वर्ग की दरमराती गहस्थी का हो, बीमार दमा की मरीज बूढी माँ का हो, यौवन की दहलीज पर पाँव रखती लाडली राज ननद का हो। माध्यम कसा भी हो सकता है। एक नही माध्यम अनेक भी हो सकते है।

मेरा आरती से मिलना-जुलना प्राय रात को सोते समय ही होता था। जब सारा घर सो जाता तो निश्चिन्त होकर आरनी सोने आती। रात को वह एक ही नीद लेती थी। कई बार माँ की खाँसी के कारण उसकी नीद मे व्यवधान पड

जाता। खाँसी व दमा ज्यादा ही परेशान करते तो आरती उठती, माँ को चाय बनाकर देती। दमा का मरीज रात मे ठीक से सो नही पाता है, विशेषकर सर्दियो की रात मे तो कभी नही। आरती इस बात को समझ गई थी। चाय पीकर माँ कुछ देर के लिए सोने का उपक्रम करती। आरती को प्यार से डाँटती क्यो बठी हो, जाकर सोती क्यो नही। देखो मुझे तो नीद आ रही है।

माँ भी समझती थी नीद कैसी आ रही है और यह मौन समझ ही गृहस्थी को बाँधे रहती है, इस गाडी को चलाती रहती है। जिस दिन समझ मुखर हो जाती है, गृहस्थ की गाडी की चाल लडखडाने लगती है। माँ जबरदस्ती कुछ देर के लिए अपनी खाँसी को दबाती। उसका कलेजा मुँह को आ जाता। खाँसी को दबाना बहुत ही उच्च श्रेणी का अभिनय है। गले की नसें तन जाती हैं, अभिनय की पोल खुल जाती है, किन्तु यह अभिनय चिमनी की रोशनी मे माँ रजाई ओढकर करती थी। इसलिए करीब करीब वह कामयाब ही रहती थी।

मैं बिस्तर पर पडा पडा कभी माँ की दमे की बीमारी को कोसता, कभी आरती की सेवा-भावना को और अवसर अपने तकदीर को। तकदीर को इसलिए कोसता कि इसने मुझे उस देहात के घर मे ही क्यो लाकर पटका। यदि यही जन्म देना था तो माँ को दमे की बीमारी क्यो लगाई? यदि दमा की बीमारी ही लगाई तो आरती को माँ के साथ इतना क्यो जोडा? यदि आरती मा की खाँसी के साथ उठकर खडी नही हो जाती तो शायद मैं धीरे-धीरे खाँसी सुनते सुनते सोने का अभ्यासी बन जाता। यदि यही सब करना ही था तो मुझे नौकरी भी इस

गाँव के इद-गिद ही क्यो दे दी। रखा ही क्या है, इस नौकरी मे। सिवाय दो जून की रोटी के, दिन मे एक-दो वार की चाय के। इससे तो मेरे वावा ही सुखी है। उन्होने अपना वचपन भी खेत मे खेलकर विताया, यौवन भी खेत के ही नाम लिख दिया और बुढापा भी वही विखेर रहे हैं। वे आज भी स्वस्थ हैं, हिम्मतदार है।

माँ के लिए दवा भोजन की खुराक का हिस्सा वन चुकी थी। घर-गृहस्थी का कार्य आरती के लिए नशा वन चुका था। पूरे घर का वातावरण मेरे लिए घुटन वन चुका था। समाधान किसी का भी नही था। दमा की बीमारी असाध्य होती है, परहेज ही उसका इलाज है। कमठ व्यक्ति के लिए काम नशा ही नही, पूजा वन जाता है और बुद्धिजीवी के लिए निराशा घुटन का कारण वन जाती है। आरती जीवनक्षत्र मे जितनी कमठ थी, उसे देखते हुए पूजा उसकी की जानी चाहिए थी, किन्तु पूजा, पूजा की ही की गई। इसे विडम्वना नही कहेंगे तो क्या कहेंगे? इस तरह की विडम्बना हजारा वर्षा से इस धरती पर होती आई है। दोष किसी को भी नही दे सकते।

धरती के कागज पर वहुत से व्यक्तियो की तस्वीर अधूरी ही रहनी होती हे इसलिए अधूरी ही रह जाती है। यही जीवन का शाश्वत सत्य है। इस सत्य से प्रभावित होने वाली आरती भी एक था। पूजा और आरती का व्यक्तित्व अलग अलग था, प्रकृति अलग-अलग थी, स्वभाव अलग-अलग थे। इन दोना मे किसी एक का अच्छा या बुरा कहना किसी के भी साथ न्याय करना नही होगा। पूजा के वारे मे मैं आपको वताऊँगा, अवश्य वताऊँगा महाशय, नही तो यह कहानी पूण ही कैसे होगी?

कहानी जो इस समय मैं आपको सुना रहा हूँ। आरती की कहानी, फिर पूजा की कहानी और अन्त में इस पत्र की कहानी, जो मेरे हाथ में पड़ा हुआ है।

धीरे-धीरे मेरा मन गाँव के पास की स्कूल से भर गया था। स्थानीय व्यक्ति होने के नाते न तो स्कूल में इतना रोबदाब था, न छात्रों पर। फिर ठहरी कच्ची नौकरी। स्कूल कमेटी कब निकाल बाहर करे, इसका क्या कोई भरोसा था। स्कूल कमेटी के किसी भी सदस्य का कोई निजी आदमी आया और मेरी छुट्टी। यह बात मेरे दिमाग में जमी हुई थी। जहाँ भी मौका मिलता मैं आवेदन-पत्र भेजने में नहीं चूकता था। महीने में दस-बीस रुपयों का खर्च इस मद पर और बढ़ गया था। कंगाली में आटा गीला ऐसे ही होता है। यहाँ तो जितना कुछ स्कूल से मिल रहा था उसमें अपना गुजारा भी मुश्किल से हो रहा था फिर इस नई मद का व्यय ऊपर से। सबसे बड़ी बात यह थी कि यहाँ देहात में रह कर कोई ट्यूशन की गुंजाइश नहीं थी। अध्यापक का सच्चा मित्र ट्यूशन ही होता है।

मैंने एक बार आरती से कहा चलो पाँच-सात दिन के लिए दिल्ली घूम आते हैं। स्कूल की दशहरा की छुट्टियाँ शुरू हो गई थीं। दिल्ली में आरती की बहिन रहती थी। उसके पति वहीं नौकरी करते हैं। सोचा वहीं पर उनसे कोई अच्छी नौकरी के जुगाड़ के लिए भी कहा जायेगा। आरती राजी नहीं हुई। आरती को अपनी बहिन से ज्यादा मेरी बहिन से मोह हो गया था। यदि वह पाँच सात दिन के लिए चली गई तो माँ की देख-भाल, घर का सारा कामकाज अकेली राज पर पड़ जायेगा। वह इतना झंझट कैसे सम्भाल पायेगी। यदि सम्भालेगी भी तो

परेशान तो होगी ही। राज ने बहुत कहा था, "भाभी कभी-कभी तो घर के बाहर निकला करो।" किन्तु आरती पर उसका असर नहीं होना था, नही हुआ। उस समय की आरती को देखकर यही लगता था कि गृहस्थी का दूसरा नाम ही आरती है।

आदमी को प्रयास करते ही रहना चाहिए, करते ही रहना चाहिए। जीवन मे किसी एक काम को करने के लिए सफलता एक ही बार मिलती है, यदि मिलती है तो, परन्तु प्रयत्न हजारो बार करने पडते है। जीवन्तता की यही निशानी है। आरती ने न मेरा पीछा छोडा, न रिश्तेदारो का और उसका प्रयास प्रभावी ही रहा। आखिर राज के लिए वर ढूँढ ही लिया गया। जितना थोडा-बहुत ध्यान आरती मेरा करती थी, उसमे भी विद्युत-सप्लाई की तरह बीच-बीच मे कटौती शुरु हो गई थी। कभी-कभी तो यह कटौती शत-प्रतिशत तक हो जाती थी। मुझे यह जान लेना चाहिए था कि यह कटौती मेरे हित मे ही की जा रही है मेरी बहिन की शादी होने जा रही है, आरती ले देकर उसी मे तो व्यस्त है फिर भी मैं आरती के उपेक्षा भाव से मन ही मन दुखी होने लगा था।

आरती घर-गृहस्थी पहले की तरह ही सभाले हुए थी। वही सुबह जल्दी उठना, घर की सफाई करना, भोजन बनाना, माँ की सेवा करना, उसको यथासमय दवा देना बीच बीच में राज की शादी की तैयारियाँ और राज से मीठी-मीठी चुहल-बाजी। वह धीर गम्भीर औरत, अभावो मे जीते जीते भी अपने मन का सचित मधु राज को इस कदर समर्पित कर देना चाहती थी कि राज ससुराल जाने के पहले शहद सी मीठी बन जाय। उसके हर व्यवहार मे शहद का-सा मिठास टपकने लग जाय।

कोई भी भाभी, अपनी छोटी ननद को इससे ज्यादा कीमती उपहार क्या दे सकती है। माँ अक्सर खटियाँ पर ही पडी रहती। बाप अपने खेत के कामकाज मे ही व्यस्त रहते। देखा जाये तो शादी की पूव तैयारियाँ आरती के ही जिम्मे थी। बीच-बीच मे वह राज की मदद ले लेती थी। लडकी की शादी न तो अकेली तैयारियो से होती है, न अकेले पैसे से। दोनो का सामन्जस्य किसी भी शादी के लिए जरूरी है। यद्यपि आरती ने कभी प्रबन्ध-व्यवसाय का कोर्स नही किया था, किन्तु इस कार्य मे उसकी बुद्धि किसी भी विश्वविद्यालय की योग्यता प्राप्त प्रबन्धक से कम नही थी।

ज्यो-ज्यो शादी का समय नजदीक आता गया, आरती की नीद मे कटौती शुरू हो गई थी। मने आरती की आँखे गुस्से से कभी भी लाल नही देखी, किन्तु नीद मे कटौती होने पर, जब आरती सोकर उठती तो सुबह उसकी आँखो मे लालिमा अपना रग अवश्य दिखाती, किन्तु गुस्से की लालिमा मे और इस नीद की कटौती से उत्पन्न लालिमा मे बडा अन्तर होता है, यह मैंने उस समय की आरती को देखकर सहज ही महसूस कर लिया था।

आरती ने अपने शरीर की तरफ ध्यान देना भी कम कर दिया था। एक रात घरवालो की सभा आरती ने माँ के कमरे मे बुलाई। बाबा को भी बुलाया गया, मुझे भी। राज की शादी तो तय कर दी थी, पर समस्या पैसो की थी। घर मे छोटी होने के बावजूद भी उस सभा की अध्यक्षता आरती ने ही की। राज ने दुभाषिये का काम किया।

आरती बाबा के सामने बोलती नही थी, इसलिए तरह-तरह के प्रस्ताव आये। किसी ने घर बेचकर शादी करने

को कहा तो किसी ने खेत गिरवी रखकर। जो कुछ भी घर में पहले था, वह मेरी पढाई पर व्यय हो चुका था। खेत गिरवी रख देने से कमाई का कोई साधन नहीं बचेगा, लेकिन इसके अतिरिक्त कोई उपाय भी नही सूझ रहा था। अंत मे आसन की तरफ से ही व्यवस्था दी गई। आरती के पास जितने भी जेवर है, सबको बेच दिया जाए। जेवर फिर बन सकते हैं। पैसा हो तो, जो है उनसे भी सुन्दर बन सकते है, परन्तु पुर्खो का मकान और खेत दुबारा नहीं मिल सकते। जेवर बेचने के बाद भी यदि और आवश्यकता हो तो कर्जा भी लिया जा सकता है। थोडा-थोडा कर चुका देंगे।

दूसरे दिन सुबह आरती ने अपने गहनो का डिब्बा बाबा के हाथो मे थमा दिया था। बाबा गाँव के सुनार को साथ लेकर उसे बेचने शहर चले गये थे। मैं स्कूल चला गया था। आरती यदि मगलसूत्र को उतार कर नही देती तो शायद उसे गहने की इतनी याद नही आती। मगलसूत्र को आरती हर समय पहने रहती थी। कहना चाहिए जिस दिन मगलसूत्र आरती के गले मे पडा था तब से उसने उसे कभी उतारा ही नहीं। घर वालो ने मना भी बहुत किया था, कम से कम मगलसूत्र तो रख ही लो।

राज तो एक बार बाबा के हाथ से उसे वापस ही ले आई थी, किन्तु आरती ने उसे डाँट दिया था राज जिद नहीं किया करते। तुम्हारे भैया कमायेंगे तो तुम्हारी शादी के बाद इससे भी बढिया मगलसूत्र बनवा देंगे, इससे भी भारी और कीमती। राज की भी जिद नही चली, किन्तु आरती मगलसूत्र को नही भूल सकी। सोकर उठने पर, काम करते-करते अचानक उसका हाथ गले पर चला जाता। वह चौंक उठती। शायद

मगलसूत्र कही गिर गया है, किन्तु उसी क्षण वह अपनी गलती को समझ जाती ।

ऐसा दिन रात मे एक बार नही, दस बीस बार हो जाता था । ज्यो-ज्यो समय बीतता गया, आरती का चौकना कम होता गया । उसका गले पर हाथ भी उतनी बार नही जाता था । उसने मोली की एक डोरी बाँधकर गले मे लटका ली थी । महाशय, औरत अपने प्यार को भूल सकती है, किन्तु प्यार के प्रतीक को कभी नही भूल सकती और जो औरत प्यार के प्रतीक को भी भूल सकती है, वह औरत नही देवी होती है, देवी । आरती एक ऐसी ही देवी थी ।

यदि यह बात मेरे उस समय समझ मे आ जाती तो इतना बडा अनर्थ कभी नही होता, कभी नही होता । यह सब मेरी नासमझी के कारण ही तो हुआ । यदि यह अनर्थ नही होता तो मेरे जीवन मे पूजा कभी भी नही आती । आती भी तो टिक नही पाती और यदि ऐसा नही होता तो आपको इस समय ढलती रात मे आरती की कहानी सुननी पडती, न पूजा की और न इस पत्र की, जो इस समय मेरे हाथ मे पडा हुआ है ।

राज को जिस रात ससुराल विदा किया, आरती रात भर सो नही सकी थी । भाई मैं भी था किन्तु मैं आपको पहले ही बता चुका हूँ, मैं कल्पनाजीवी था, आरती नितान्त व्यावहारिक । मैने आरती की बेचैनी को समझ लिया था । विदा होते समय आरती के गले से लिपट गई थी राज । बहुत रोई थी, रोते-रोते कुछ देर के लिए बेहोश भी हो गई थी । मेहमानो से भरे हुए शादी के घर मे भी घर का एक कोना आरती को सूना ही लग रहा था ।

राज के बिना उसे घर,घर ही नही लग रहा था। भाभी ने पुकारा, राज हाजिर। बहुत बार तो बिना पुकारे ही आरती को छेड़ने के लिए भी राज हाजिर। कामकाज के लिए छीनाझपटी आरती माँ के पास तो राज भी माँ के पास। आरती रसोई घर मे तो राज भी रसोई-घर मे। आरती खेत पर तो राज भी खेत पर। अन्यतम सहेली हो गई थी राज आरती की। आरती के घर मे आने के बाद ऐसा शायद ही कोई दिन या रात होगी जब राज ने अकेले खाना खाया हो, दोनो एक ही थाली मे बैठकर खाना खाती।

बहुत बार मैंने देखा है दोनो खडी-खडी गपशप करती रहती, बिना थाली के ही दोपहर का नाश्ता करती। एक की हथेली पर रोटी होती, दूसरी की हथेली पर अचार। वे सारे क्षण आरती की आँखो मे रातभर तैरते रहे। सुबह उठकर देखा आरती की आँखे एकदम लाल हो रही थी। राज के विदा होते समय जिस पात्र मे डालकर उसके गोरे हाथो पर मेहदी रचाई थी, उस पात्र को सुबह साफ करते समय आरती की आँखो मे राज की तस्वीर बहुत साफ दिखाई पड रही थी।

आरती बहुत देर तक उस थाली को साफ करती ही रही। थाली एकदम चमक उठी, फिर भी आरती उसे साफ करती रही। यदि मेरी रिश्ते की बुआ आकर आरती को चाय बनाने के लिए नही कहती तो मै समझता हूँ आरती घण्टे भर भी बैठी बैठी उस मेहदी की थाली को साफ करती रहती।

शादी के बाद काम तो केवल राज का ही कम हुआ था, बाकी काम तो बढ ही गये थे। माँ की सेवा, दवा देना, घर का सारा काम। अब सब कुछ अकेली आरती के जिम्मे ही आ गया था। राज जब थी, आरती के लाख मना करने पर भी उसको

कामकाज मे हाथ बँटा ही देती थी। अब तो सब कुछ आरती को ही करना है, अकेली आरती को। माँ की हिम्मत नही जो आरती को घर के कामकाज मे हाथ बटा सके। घर मे कोई दूसरी स्त्री नही थी। आरती अपनी मजबूरी समझती थी, इसलिए उसने अपने आपको और भी कर्मक्षेत्र के हवाले कर दिया था। आरती के बचे-खुचे समय की कर्मयज्ञ मे आहुति होते मैं देखता रहता। मौन दर्शक की तरह मूक बन कर, गूंगे की तरह मूक बन कर।

ज्यो-ज्यो माँ की बीमारी बढती जा रही थी, आरती का कामकाज भी बढता जा रहा था। अब तो वह करीब करीब समय माँ के पास ही मण्डराती रहती। बीच-बीच मे आरती का स्वास्थ्य भी जवाब देने लगा था। महाशय किसी नारी का चिता की लपटो पर सती होना आपने देखा तो नही सुना जरूर होगा। मैंने भी देखा तो नही है। सुना बहुत बार है, पिछले वर्षों मे भी राजस्थान मे कई सतियां हुई है। लोग कहते है इतिहास स्वय को दुहराता है। इस सती प्रथा पर तो यह बात अक्षरश लागू होती है।

राजा राम मोहन राय के अथक प्रयासो के बाद समाज मे धीरे-धीरे सती प्रथा लुप्त हो गई थी। जो अचानक पिछले दशक मे फिर जागृत हो गई। कारण कुछ भी रहे हो, इतिहास के अपने आपको दुहराने की बात अवश्य सच हो जाती है। इस प्रकार सती होने मे कितनी सार्थकता है अथवा नही, मैं इस पचडे मे नही पडना चाहूँगा। न ही इस कहानी से आज की कहानी से उस प्रथा का कोई सम्बन्ध ही है।

एक बात मैं अवश्य कहूँगा। चिता की लपटो मे स
होने पर लाखो दर्शक उसे देखते हैं, उसकी जय-जयकार क
हैं, बाद मे वहाँ मन्दिर बनते है, मेले लगते हैं। लोग उ
पूजते है, किन्तु उन जीवित नारियो को नही पूज पाते। ह
हिंदुस्तानी पत्थर पूजने के आदी है। आदमी को पूजना ह
छोड दिया है। चिता की लपटो मे जलने से लाख गुना ज्या
दु ख चिन्ता की लपटा मे जलने से होता है। यह बात मेरे ट
समय भी समझ मे नही आई थी। आरती ने अपने बारे
सोचना भी छोड दिया था। राज के ससुराल चले जाने के ब
घर मे सबसे छोटी आरती ही रह गई थी, किन्तु आरती इत
छोटी भी नही थी जिसे बच्चे की तरह प्यार किया जा सके

राज जब ससुराल से लौटी तो आरती की हालत देख
लायक थी। वह भूल रही थी उसे क्या करना चाहिए और ब
नही। शाम को स्कूल से आने पर आरती पहली बार मेरे लि
चाय लेकर आई। उसने आते ही कहा, 'पता है आज राज आ
है।" यह कहने की क्या जरूरत है यह तो तुम्हारे चेहरे से ही प्रक
हो रहा है। आरती मुस्करा भर दी थी। मैंने आरती से कहा थ
आरती एक बात कहूँ। हैं ! कौन मना करता है, कहिए न।

मैंने कहा क्या ही अच्छा होता आरती मैं तुम्हारी नन
होता और राज तुम्हारा पति। तुम उसे कितना प्यार कर
हो। सुनकर आरती ने इतना ही कहा था शैतान कही के
और चाय की खाली प्याली उठा कर वह बाहर निकल गई
मैं उस समय भी नादान ही था। यद्यपि मैं छात्रो को पढाता थ
किन्तु मुझे स्वय को किसी अध्यापक की आवश्यकता थी ज
साफ शब्दो मे पढा सकता, "बेवकूफ लडके, प्यार हासिल कर

के लिए प्यार करना भी पड़ता है। जिसे प्यार करना नहीं आता, वह प्यार पाने का अधिकारी कभी कहीं हो सकता।"

इस बार जब राज ससुराल से लौटी तो वह पूर्ण वयस्क हो चुकी थी कम से कम उसकी बातचीत से, व्यवहार से तो ऐसा ही लगता था। उसने आते ही आरती से शिकायत शुरू करदी थी, भाभी घर मे सूना-सूना लगता है। देखो भाभी हमारे घर मे गौरैया घोसला बना रही है, बताओ क्यो ? वह इसमे अपने बच्चे को जन्म देगी और राज ने मनौतियाँ मनाने के लिए आरती को न जाने किस-किस देवता के पास ले जाना शुरू कर दिया था।

दो-चार महीने बाद राज फिर ससुराल चली गई। दो-चार महीना का यह समय बहुत ही हँसी ठिठौली मे बीता। अभावो मे भी आरती के स्वास्थ्य मे काफी सुधार हो गया था। माँ भी गरमी का मौसम आ जाने से दमा की बीमारी में कुछ राहत महसूस करने लगी थी। राज ने इस बार जाते-जाते आरती स कहा था, 'भाभी अब मैं बुआ बन कर ही आऊँगी।' सब हँस पडे थे। मेरी माँ के थके हुए चेहरे पर यह सुनकर एक ताजगी-सी आ गई थी। राज के चले जाने के बाद घर की वही पुरानी हालत हो गई थी। राज की शादी के कर्जे को चुकाने की तिथि ज्यो ज्यो नजदीक आती जा रही थी, हम लोगो की व्यग्रता उतनी ही बढ रही थी।

इतना सब कुछ होने पर भी,इतनी चिन्ताएँ दिमाग पर होने पर भी मैं अब भी सपनो मे ही जी रहा था। स्वप्नजीवी कभी अच्छा दुनियादार नही हो सकता। आरती ने घर मे आते ही मेरी जवान होती बहिन मे कल की दुल्हन का रूप देखना शुरू कर दिया था, मेरी माँ दिन भर आरती मे एक होने वाली माँ का

रूप खोजती रहती और मैं हर रात आरती मे एक और काजल को खोजता रहता। मैंने सोते जागते, आरती मे एक और काजल को ही खोजने की कोशिश की। सच पूछें तो महाशय, मैंने आरती मे कभी आरती को ढूँढा ही नहीं।

मैं आरती मे ही केवल काजल को खोजता रहा, केवल काजल को ही, किन्तु मेरी यह खोज मृग-मरीचिका ही रही। न तो मुझे काजल ही मिल पाई और न मैं आरती को ही प्राप्त कर सका। जिसे मैं प्राप्त करना चाहता था, वह अलभ्य बन कर रह गई। जो मुझे प्राप्य थी उसे मैं अपना नहीं सका। मैं हर बार आरती के हर काम की, हर चीज की, हर व्यवहार की, हर गुण की तुलना काजल से करता रहा, किन्तु बहुत-सी वस्तुएँ सापेक्ष नही, निरपेक्ष ही होती हैं। पत्नी-सुख भी उनमे एक है।

मैंने मात्र आरती के रंग को देखा रूप को देखा प्यार को देखा, किन्तु उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को नही देख पाया। जीवन की बहुत सी अंधेरी-उजली गलियो मे भटकने के बाद मैं यह बहुत बाद मे जाकर सीख पाया था कि सार्थक प्यार किसी व्यक्ति से नही, उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व से होता है। अगर यह पते की बात उस समय मेरी समझ मे आ जाती तो इतना बडा अनर्थ नही होता जो आरती के सर्वनाश का कारण बना, मेरे सर्वनाश का कारण बना, पूजा के सर्वनाश का कारण बना और हम सब के सर्वनाश का कारण बना।

महाशय रात अब बहुत ही कम शेष रह गई है। बीच-बीच मे एक दो पशु-पक्षी भी आश्रम के बाहर बोलने लगे है। लगता है जल्दी ही सूर्योदय होने वाला है। जिस प्रकार कई

व्यक्ति सुबह ज्यादा जल्दी उठने के आदी होते हैं, उसी तरह कई पशु-पक्षी भी, अन्यो की तुलना मे सुबह जल्दी उठने के आदी होते ह। वे ही पक्षी बोल रहे है, जो सुबह जल्दी उठने के आदी हैं। सूर्योदय होने से पहले-पहले यह पूरी कहानी आपको सुनानी ही पडेगी। अवश्य ही सुनानी पडेगी। इसको पूरा किये बिना इस पत्र का रहस्य आप कभी भी नही समझ पाओगे जो इस समय भी मेरे हाथ मे पडा हुआ है।

यह कहानी मने पहली बार बाबा बैजनाथ को सुनाई थी, किन्तु उस कहानी मे इतना समय नही लगा। कारण स्पष्ट था, उस कहानी का पूर्वार्द्ध आश्रम से सम्बन्धित था, जिसे मैं क्या खाकर सुनाता। वह कहानी तो मुझे ही बाबा बैजनाथ ने सुनाई थी। उस कहानी का उत्तरार्द्ध भी बाबा को सुनाने की स्थिति नही थी, कारण कहानी पूजा पर ही आकर समाप्त हा गई थी। इसलिए कहानी का मध्य भाग ही था, जो मैंने पूरी कहानी के रूप मे बाबा बैजनाथ को सुनाया था। दूसरी बार जिस व्यक्ति को यह कहानी सुनाई, उसे भी इतनी लम्बी कहानी नही सुनानी पडी। कारण यही था। वह व्यक्ति भी इस कहानी का ही एक पात्र था, इसलिए उसे भी पूरी कहानी सुनाने की आवश्यकता नही थी।

आप इस कहानी का कुछ भी नही जानते, बिना सुनाए कुछ भी नही जानते। इसलिए यह कहानी आपको विस्तार से सुनानी ही पडेगी। कहानी मे से कहानी यो ही निकलती रहती है महाशय, आप यह मत सोच लीजियेगा कि अब जो मैं आपको कहानी सुनाने जा रहा हूँ वह केवल आरती की ही कहानी होगी, उसके बाद केवल पूजा की ही कहानी होगी।

कहानी मे से कहानी निकलना कहानी का गुण है, धर्म है। पूजा के बाद आपको जया की कहानी तो सुननी ही पडेगी। बिना जया की कहानी सुने आप इस पत्र की कहानी कभी भी नही समझ पायेगे, जो इस समय भी मेरे हाथ मे पडा हुआ है।

गरमी की छुट्टियाँ हो गई थी। स्कूल बन्द हो गया था, मेरे सामने अब एक ही विकल्प था, किसी त ह से जोड तोड कर किसी शहर मे अध्यापक की नौकरी तलाशी जाय। जब एक बार आदमी किसी चक्रव्यूह मे उलझ जाता है तो उसी में उलझा रहता है। पसन्द भी उसी मे उलझने की हो जाती है। नौकरी तो और भी सौ तरह की हो सकती है, किन्तु अध्यापक की नौकरी में रिश्वत खाने की आवश्यकता नही है। वहाँ नौकरी के अलावा ट्यूशन करके अतिरिक्त आमदनी की जा सकती है। अतिरिक्त आमदनी और ऊपरी आमदनी मे यही अतर है। अतिरिक्त आमदनी अतिरिक्त मेहनत करने से आती है जबकि ऊपरी आमदनी उस कुर्सी का bve-product है जिस पर हम बठे हैं। मैंने इन दोनो तरह की आमदनी मे अतिरिक्त आमदनी को ही श्रेयस्कर समझा। गर्मियो की छुट्टियाँ समाप्त होते होते बीकानेर के एक प्राइवेट हाईस्कूल मे मुझे एक वरिष्ठ साइन्स अध्यापक की नौकरी मिल ही गई।

नौकरी जब बीकानेर मे मिल गई तो वहाँ जाकर रहना भी जरूरी हो गया। वहाँ जाकर रहना जरूरी हो गया तो वहाँ मकान की व्यवस्था करनी भी जरूरी हो गई। बीकानेर ठीक-ठाक शहर है, बडा भी है। वहाँ मकान इतनी आसानी से तो मिलता नही। नौकरी कई बार योग्यता के आधार पर

भी मिल सकती है। कम से कम अपवाद स्वरूप तो मिल ही सकती है, किन्तु मकान, अच्छा रहने लायक मकान मिलने के लिए आप मे दो योग्यताए साथ-साथ होनी जरूरी है। एक तो अच्छा किराया देने की योग्यता, दूसरी शादीशुदा होने की योग्यता। अकेले आदमी को कोई अपना मकान किराये पर नही देना चाहता। इसके लिए भी कई बार तो विवाहित होने का अभिनय करना पड़ता है। कई बार यह अभिनय भी बहुत महँगा पडता है, बहुत ही महँगा, सोने चान्दी से भी महँगा।

मैने हॉस्पिटल के पास पश्चिम की तरफ नई कालोनी मे एक मकान किराये पर जुगाड लिया। मकान एक ओसवाल महाजन का था, जिसका पूरा परिवार जयपुर मे जाकर आबाद हो गया था। इसलिए वह मकान किराये पर देने को राजी हुआ था। मकान काफी बडा था, किन्तु हमे जो हिस्सा किराये पर दिया गया, उसमे दो कमरे, एक बाहर की तरफ खुलता हुआ तथा दूसरा अन्दर चौक मे खुलता हुआ, बगल मे एक छोटा-सा रसोईघर व भण्डार घर। बाकी मकानो पर मकान मालिक का ताला लगा हुआ था। वे कभी साल मे एक दो बार मय परिवार यहाँ आते, दस पाँच दिन ठहरते, फिर चले जाते। उस मकान मालिक ने बहुत ही ठोक बजाकर इस शर्त के साथ मकान किराये पर दिया था कि महीने भर के अन्दर अन्दर मैं अपनी पत्नी को यहाँ साथ लाकर रहने लग जाऊँगा। उसकी भी मजबूरी थी।

मकान मालिक के दो जवान बेटियाँ थी, दोनो ही राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर मे अध्ययन करती थी। बूढी माँ के साथ वे भी घूमने बीकानेर आ जाती। कभी-कभी दोनो अकेली ही आ

जाती। उस समय यदि किरायेदार बालबच्चेदार न हो तो उनका अपने ही घर मे आकर ठहरना असम्भव था। किराया छ महीने का अग्रिम दे चुका था। किराया की शर्तों की पालना नही करने पर किराया की पूरी अग्रिम राशि जब्त कर लेने की भी शत थी, जो मैंने मकान की हालत को एव स्थिति को देखकर सहप स्वीकार कर ली थी।

इसी कालोनी मे ऊँचा किराया देकर रहने मे भी लाभ ही था। यही सोचकर मैंने ज्यादा किराये का मकान किराये पर लिया था। थोड़ी-सी भी कोशिश करता तो शहर के भीतरी हिस्से मे, रेल्वे स्टेशन के आस-पास, रानी बाजार मे, मुझे सस्ता मकान भी मिल सकता था, लेकिन उसमे मेरी रुचि ही नही थी। यह कालोनी नई ही बसी हुई थी। बसी हुई क्या थी, बस रही थी। यहा शिक्षित और सम्पन्न लोग ही रहते थे। मेरी स्कूल मे छात्र भी थे, दसवी कक्षा मे छात्राएँ भी थी। कारण इसी स्कूल मे सारे विषय पढाये जाते थे। इसलिए छात्राओ की सख्या भी ठीक ठाक थी।

यहाँ सम्पन्न घरा के लडके लडकियो के ट्यूशन मिल जाने की अधिक सम्भावना थी। लडकियो के मामले मे तो ऐसा होता ही है। कुछ पैसे ज्यादा भी लगते भी हा तो माँ-बाप अपनी लडकियो को आस-पास के अध्यापक के पास ट्यूशन करने भेजना ज्यादा समझदारी का काम समझते है, ताकि आने जाने की असुविधा व झझटो से बचा जा सके। देर-सबेर घर का कोई सदस्य लडकी को लाने ले जाने भी आ सकता है। यही सब सोचकर मैंने इसी कालोनी मे मकान किराये लेकर रहना शुरू कर दिया था। मैं इस बार मेरे घर की गरीबी को

मिटा देना चाहता था इसलिए पूरी तैयारी के साथ इस काम मे तथा नई नौकरी मे जुट गया था।

नयी नयी नौकरी थी। कई तरह की समस्याएँ थी। एक तरफ अच्छी तरह से पढाकर छात्र-छात्राओ को प्रसन्न करना था तो दूसरी तरफ अच्छे व्यवहार से स्कूल कमेटी के सदस्यो को खुश रखना था। अच्छा गृहस्थ होने का सबूत मकान मालिक को ही देना था, ताकि मैं उस पूर्ण सुविधाजनक मकान मे टिका रह सकूँ। धीरे-धीरे मेरी ट्यूशन भी चल निकली थी। मेरी स्कूल के भी तथा अन्य स्कूलो के छात्र-छात्रा भी मेरे पास घर पर पढने आने लग गये थे।

इसी बीच मै गाँव जाकर आरती को भी यही बीकानेर ले आया था। शुरू-शुरु में तो आरती ने एकदम मना कर दिया। उसने साफ कह दिया वह बीमार माँ को छोडकर बीकानेर नही जा सकती। यहाँ इनकी देखभाल कौन करेगा। फिर सब-सम्मति से परिस्थितिवश यह निर्णय लिया गया कि बाबा अकेले यही रहेगे। आरती व मा मेरे साथ बीकानेर रहेगी। बीकानेर मे मा की सेवा भी होती रहेगी व बडा अस्पताल है, इलाज की भी व्यवस्था और अच्छी हो सकेगी। बाबा को गाव छोडकर आरती व माँ को लेकर एक सुबह मैं बीकानेर पहुँच गया था। बीकानेर रेल्वे स्टेशन जो शहर के बीच मे है, वहा से सीधा ताँगा करके हम लोग हमारे किराये के मकान मे आ गये थे।

कुछ दिन तो आरती को इस नये मकान मे अपनी गृहस्थी जमाने मे ही लग गये। वह बाहर बहुत ही कम निकलती थी। अपना काम से काम, मतलब से मतलब। इतने वर्षा का ज्वाला-मुखी का लावा अब कहकहो के रूप म कभी-कभी शरीर से

बाहर निकल जाता था। ऐसी बात नही थी कि आरती मे भावनाएँ या भावुकता थी ही नही। आरती भी एक औरत थी। औरत सुलभ सारे ही गुण उसमे थे, किन्तु वह परिस्थिति के अनुकूल ढलना जानती थी। परिस्थिति के साथ उसने छल कभी नही किया किन्तु परिस्थिति पर विजय आज तक कोई नही पा सका है। आप भी नही, मैं भी नही, आरती भी नही। अगर परिस्थिति पर विजय पा सकते तो यह कहानी जन्म ही नही लेती। न आपको आरती की आगे की कहानी सुननी पडती, न पूजा की कहानी सुननी पडती, न जया की कहानी सुननी पडती और न ही इस पत्र की कहानी आप को सुननी पडती, जो इस समय भी मेरे हाथ मे पडा हुआ है।

आरती एव माँ के यहाँ रहने से मुझे काफी राहत मिल रही थी। एक बहुत बडी सुविधा भी मिल रही थी। पूजा हायर सेकेण्ड्री की छात्रा थी। मेरे ही स्कूल मे पढती थी। पूजा के माँ बाप बगाली थे किन्तु दो पीढियो से ही उनका परिवार राजकीय सेवा मे होने के कारण राजस्थान मे ही रह रहा था। इसलिए पूजा को हिन्दी बहुत अच्छी बोलनी आती थी। जब तक वह अपना पूरा नाम पूजा चक्रवर्ती किसी को नही बतला देती, तब तक आसानी से उसे कोई बगाली समझता भी नही था। गोरा रग, लम्बा कद इकहरा बदन, तीखे नाक-नक्श स्वस्थ व सुन्दर शरीर। यही पूजा थी। पूजा चक्रवर्ती हायर सैकण्ड्री विज्ञान की छात्रा, पढने मे कुशाग्र, बोलचाल मे विनोद प्रिय। पूजा रोज शाम मेरे पास घर पर ट्यूशन के लिए आती थी। उसका मकान मेडिकल कालेज के पीछे की तरफ था। मेरे मकान से बहुत दूर भी नही था तो बहुत नजदीक भी नही था।

कभी-कभी मैं स्कूल से विलम्ब से पहुँचता तो पूजा, आरती के साथ दालान म गपशप करती मिलती या दोनो रसोईघर मे चाय पीती मिलती । पूजा के और आरती के झगडा एक ही बात को लेकर रहता । पूजा कहती, 'दीदी, चाय आप बनाया करो, कप मैं साफ किया करूँगी।" आरती उसे डाटती । "ऐ लडकी, यहाँ पढने आती हो, कप प्लेट साफ करने नही ।" एक दिन तो रविवार को आकर पूजा जवरदस्ती आरती को अपने घर ही ले गई । आरती ने शुरू-शुरू मे तो ना नुकर की, फिर पूजा ने बहुत ही आग्रह किया तो साथ हो ली । वापस लौटी तो आरती बहुत ही प्रसन्नचित्त थी । शादी के बाद इस तरह वह पहली वार घर से बाहर निकली थी । पूजा उसे पहुँचाने आई थी ।

उस दिन पूजा ने आते ही खुशामदी स्वर मे आरती से कहा था । दीदी, आज सर को बोल दो ना हमारा पढने का बिलकुल भी मूड नही है । आज तो गपशप ही करेंगे और उस दिन हम तीनो ने मिल कर घण्टे भर तक खूब गपशप की थी । आरती की आयु और पूजा की आयु मे कोई विशेष अ तर भी नही था । मुश्किल से पूजा एक दो साल आरती से छोटी थी ।

यदि सब कुछ इसी तरह चलता रहता तो मै आज किसी हाईस्कूल का प्रधानाध्यापक होता, आरती कई बच्चो की माँ होती, पूजा किसी अस्पताल मे डॉक्टर होती, कि तु किसी का कुछ होना या न होना उस व्यक्ति के हाथ नही है । सब कुछ पराये हाथो मे है । गृहस्थी की गाडी अपनी सही लीकों पर चलने लगी थी । यदि ऐसे ही चलती रहती तो न तो आगे

आपको पूजा की कहानी सुननी पड़ती, न जाने की और न ही इस पल की कहानी जो इस समय भी मेरे हाथ में पड़ा हुआ है।

अचानक एक दिन समाचार आया कि रिक्शगाड़ी से गिर जाने से बाबा का एक हाथ टूट गया है। प्लास्टर तो पास के अस्पताल में जाकर बंधवा लिया है। लगभग दो महीने का समय ठीक होने में लगेगा। अब माँ का गाँव बाबा के पास भेजने के अलावा कोई विकल्प नहीं था और आरती का माँ के साथ भेजने के अलावा कोई समाधान नहीं था और मेरा अकेला रहना नियति में था।

मैं माँ और आरती का एक दिन जाकर गाँव छोड़ आया था। अकेला ही वापस आ गया था। मैंने यही तय किया था, दोनों समय ट्यूशन करनी ही है, दिन में स्कूल की नौकरी। चाय पानी हाथ से बना लूंगा और खाने की व्यवस्था बाजार में किसी होटल में कर ली जाएगी। मेरी यह व्यवस्था जम भी गई। कई बार ऐसा होता कि मैं स्कूल से घर पहुँचते-पहुँचते थोड़ा लेट हो जाता उस दिन चाय हड़बड़ी में बनानी पड़ती। कभी-कभी तो मैं चाय बनाता रहता और पूजा पढ़ने के लिए आ जाती। एक दो बार मैं चाय बीच में ही छोड़कर पढ़ाने लग गया, लेकिन एक दिन मेरी यह स्थिति पूजा से छिपी नहीं रही।

मैं रसोईघर में चाय बना रहा था। पूजा ने दरवाजा खट-खटाया। मैं हड़बड़ी में चाय सिगड़ी पर ही छोड़कर आ गया। पूजा को पढ़ाने का उपक्रम करने लगा। चाय उफन कर अंगारों पर गिरने लगी तो उसकी जलन की गंध चारों तरफ फैल गई। पूजा चुपचाप किताब रख कर रसोईघर में घुस गई। उसने सब कुछ देखा। वापस आकर बोली, "सर, दूध का डिब्बा

कहाँ है, मै चाय बना देती हूँ।" मैं शर्म से गड गया। कुछ भी वहे मुझे दूसरो के सामने चाय बनाने मे भी शम महसूस होती थी। यह तो औरतो का काम है। मर्दों का रसोई घर से क्या वास्ता, लेकिन मनुष्य अपने कमक्षेत्र को शीघ्र ही पहचान लेता है।

पूजा रसोईघर से चाय बनाकर ले आई थी। बहुत आग्रह करने पर उमने भी चाय पी ली। उसके बाद तो पूजा का यह नियम सा ही हो गया कि आते ही पहले वह रसोई-घर मे घुसती, स्टोव सुलगाती और मेरे लिए तथा अपने लिए एक-एक प्याली चाय बना कर लाती। अगर सब कुछ ऐसे ही चलता रहता तो कुछ भी मुसीबत नहीं थी। एक दिन आरती लौट कर फिर मेरे पास बीकानेर आ जाती। फिर आरती और पूजा साथ-साथ चाय बना कर पीती। गपशप करती। मैं पूजा को पढाने बैठ जाता। आरती खाना बनाने मे लग जाती।

पूजा जाते-जाते पूछती, 'दीदी रविवार को अपको पिक्चर चलना ही पडेगा। मैने सर से इजाजत लेली है।' किन्तु मैंने बताया न महाशय, सोचा हुआ किसी का भी नही होता। अगर ऐसे ही होता तो मनुष्य का भाग्य, मनुष्य के ही हाथ मे होता, लेकिन ऐसा सम्भव नही है। भाग्य विधाता कोई और ही है।

आरती और पूजा मिली भी, किन्तु कहाँ मिली, कब मिली, कैसे मिली। यही कहानी तो मैं आपको सुना रहा हूँ। यदि आरती और पूजा के दुबारा मिलने की कहानी नही सुनेंगे तो आपको जया की कहानी समझ मे नही आयेगी। यदि जया की कहानी नही सुनेंगे तो इस पत्र की कहानी, जो इस समय भी

मेरे हाथ मे पडा हुआ है, कुछ भी समझ मे नही आयेगी, कुछ भी नही।

इस वरसात ने मेरा बहुत बडा अहित किया है महाशय। यह तो मैं आपको आगे बता ही दूँगा। उस साल भी वरसात बहुत हुई थी। माँ तथा आरती चली गई थी। मैं इस किराये के बडे मकान मे अकेला ही रहता था। रहते हैं, बहुत लोग ऐसे ही रहते हैं। इसमे कुछ भी तो अनहोनी बात नही थी। अनहोनी बात दूसरी ही तरह से हुई। एक दिन अचानक इसी बरसात के मौसम मे मेरे मकान मालिक ने समाचार भेजा' वह बीकानेर आ रहे है। अकेले ही आ रहे हैं। मकान मालिक को किसी ने शिकायत कर दी थी कि मैं अकेला ही उसके मकान मे रहता हूँ। मेरी स्त्री यहाँ नही रहती। मैं स्कूल के छात्रो को भी इसी मकान मे रखता हूँ तथा उनसे किराया वसूल करता हूँ। शिकायत करने वालो की कही भी कमी नही है।

मकान मालिक ने साफ लिख दिया था आप मकान मे अकेले रहते हैं। गृहस्थी नही रखते। लडको को यहाँ रखकर उनसे किराया वसूल करते है, इसलिए मैं शनिवार को सायकाल जयपुर की पिंक सिटी बस से आ रहा हूँ। आप तब तक दूसरे मकान की व्यवस्था कर लेंगे। रविवार तक आपको मकान छोडना ही पडेगा।

बडे ही असमजस से था। आज सोमवार है। केवल 5 दिन इस मकान मे और रह पाऊँगा। इसके बाद ? इसके बाद दूसरे मकान की खोज। फिर वही गृहस्थी साथ रखने की समस्या। कैसे आ पायेगी इस हालत मे आरती। माँ और बाबा को इस

हालत मे छोडकर आना उसके लिए किस प्रकार सम्भव होगा। कदापि नही। इस समय तो विल्कुल भी नही।

यदि मौसम कोई दूसरा होता तो और वात थी। खेती-वाडी के समय मे वावा खेत एक क्षण को भी नही छोड सकते। आरती मां को इस हालत मे अकेली नही छोड सकती। वावा टूटे हुए हाथ से खाना नही वना सकते। वावा के हाथ को भी इसी समय टूटना था। सर्दियो मे भी टूट सकता था। फिर ऐसी कोई समस्या नही होती।

खैर, दुनिया अपने हिसाव से चल रही थी। लडको की पढाई चालू थी। वरसात भी चालू थी और मेरी समस्याएँ भी चालू थी। सोचा था, इस वार कुछ अतिरिक्त समय मे ट्यूशन करके राज की शादी का कुछ कर्जा हल्का कर दूँगा। अगली वार और ट्यूशन करूँगा, रात-रात भर जाग कर भी ट्यूशन करूँगा। आरती का मगलसूत्र जो वनवाना था। मगल-सूत्र, जो आरती ने राज के विवाह मे बेच दिया था। वेच कौन-सी स्वेच्छा से दिया था, वेचना पडा था। मन मार कर भी बेचना पडा था।

कई मनुष्य रात दिन साथ रह कर भी एक दूसरे की समस्या को नही समझ सकते। वहुत से ऐसे होते है जो थोडी ही देर मे एक दूसरे को समझ लेते है। पूजा भी ऐसी ही लडकियो मे थी जो चेहरा देखकर परेशानी भाप ले। उस शाम पढते पढते पूजा ने बीच ही मे मुझे टोक दिया—"सर, दीदी कब तक लौटेगी?" मैंने कहा "तुम्हारी दीदी इस समय नही लौट सकती है। मुझे रविवार से दूसरे मकान मे जाना पडेगा। तुम चाहो तो अपनी

ट्यूशन दूसरी जगह ठीक कर सकती हो। मुझे पता नहीं किधर मकान मिले। कब तक मिले। तब तक शायद किसी मित्र के यहाँ डरा डालना पडे।" पूजा समझ नही सकी।

वह मेरी तरफ देखती रही। चुपचाप देखती रही। सोलह वर्ष की खूबसूरत लडकी। गोरा रग घुटनो तक लम्बे बाल, तीखे नाक-नक्श। पीछे की तरफ वेणी मे गुथा गुलाब का ताजा फूल। मैंने मन ही मन सोचा, ये लडकियाँ भी खूब होती है, खुद क्या किसी गुलाब के फल से कम खूबसूरत है जो इसे गुलाब का फूल लगाना पडा। मैं एकटक पूजा को देखता ही रहा, देखता ही रहा।

यदि पूजा अपनी नजर मेरी ओर से नही हटाती तो मैं न जाने कब तक उसे यो ही निहारता रहता। अतृप्त आकाक्षाओ को जब बाहरी हवा लग जाती है तो हरहरा उठती हैं। मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ था। आरती से मुझे सब कुछ मिला था, पर प्यार की वह दृष्टि नही मिली, जिसके लिए मैं मन ही मन तडप रहा था। प्यार जो बाल-सखी चन्दा से मिला, किशोरी काजल से मिला।

आरती का प्यार समुद्र मे उठता ज्वार नही था। किसी जलाशय मे ठहरा हुआ, निथरा हुआ, साफ पानी था जिसमे चचलता नही थी, गाम्भीर्य था, प्रौढता थी, सूझ बूझ थी। पूजा ने ही मौन तोडा, 'ऐसा क्यो सर, मकान क्यो बदलना पडेगा।' और मैंने पूजा को मकान मालिक का सन्देश सुना दिया, जो उसने मेरे पास भिजवाया था।

पूजा खूब हँसी खूब हँसी, हँसते हँसते लोटपोट हो गई। दुहरी हो गई। मैंने पूजा को इतना हँसते हुए कभी नही देखा

था। मैंने उसे रोका भी नही। उसके उन्मक्त हास्य मे भी एक सौन्दर्य था। गजब का सौन्दय। मै उससे वंचित नही होना चाहता था। जब वह हँसते-हँसते थक गई तो स्वय ही रुक गई।

काफी देर तक हँस लेने से उसका वक्षस्थल धोकनी की तरह चलने लगा। वह बैठी बैठी हाफने लगी। मेरी आँखो मे चिनगारियाँ सुलग उठी। तत्क्षण मैने महसूस किया, मै एक अध्यापक हू। पूजा मेरी शिष्या है। उसे पढाना ही मेरा धम है। इसके आगे सोचना महान् अहितकारी होगा। मेरी बूढी बीमार माँ, मेरी आखो के सामने घूम गई। उसका सिर दवाती आरती मेरी आँखो मे तैरने लगी। काश! आरती एक वार भी इस तरह से हँस कर दिखा सकती। कम से कम हँसने का अभिनय ही कर सकती।

पूजा ने स्वत ही कहा, "इसकी आप चिन्ता न करे सर। मकान आपको नही छोडना पडगा। हम लोग शनिवार तक दीदी को बुला लेगे। वैसे भी आपका दीदी को तो बुलाना ही पडेगी। पता है सर, दीदी यहाँ नही है, इस बात की जानकारी मम्मी पापा को भी नही है अन्यथा वे मुझे आपके पास ट्यूशन पढने अकेली को हरगिज नही भेजते। मैं मम्मी पापा से हर रविवार कहती रहती हूँ, दीदी बहुत व्यस्त है, इसीलिए आज मेरे साथ नही आ सकी। अगले रविवार को जरूर आयेंगी।"

मैं असमजस मे पड गया। यह लडकी बहुत ही तेज है। हो सकता है मकान मालिक से इसके मम्मी पापा का परिचय हो और वे मेरी इस विषय मे कुछ मदद कर सकें। फिर भी

मैंने अपनी शका अपनी शिष्या के सामने रख ही दी, "पूजा तुम जानती हो, आरती इस समय नही आ सकती, हरगिज नही आ सकती।" पूजा ने बहुत ही सहज ढग से कहा, "दीदी को हम बुलायेंगे। सर अवश्य बुलायेंगे। आप देखना हम किस तरह जादू से दीदी को हाजिर कर देते हैं। शनिवार को देख लीजियेगा।"

नादान लडकी! कहना बहुत आसान होता है करना उतना ही मुश्किल। आरती को बुलाना क्या इतना आसान है। मैं पूजा को नही समझ सका था। पूजा मेरी पारिवारिक समस्याओं को नही समझ सकी थी। यदि उस दिन ये सारी चर्चा मैं पूजा के साथ नही करता तो भी यह अनर्थ टल सकता था। अवश्य टल सकता था महाशय, जिसने आगे हम सब का ही सर्वनाश किया, मेरा भी, आरती का भी, पूजा का भी।

सभी का तो अहित किया था इस छोटी सी बात ने। यदि मकान मालिक का यह सदेश मैं उस दिन पूजा को नही बतलाता तो न तो यह कहानी इससे आगे बढती, न आगे आपको पूजा की कहानी सुननी पडती, न जया की कहानी सुननी पडती, न इस पत्र की, जो इस समय भी मेरे हाथ मे पडा हुआ है।

चार दिन तक पूजा लगातार पढने आती रही। मैं उसे पढाता रहा। वह चुपचाप पढती रही। न मैंने अपनी तरफ से मकान खाली करने की चर्चा की, न पूजा ने अपनी तरफ से कुछ पूछा। शुक्र को जब पूजा पढ कर घर जाने के लिए उठी तो

मैंने कहा, "पूजा चाय तो पिलाती जाओ। इस मकान मे हम लोगो की आखिरी चाय।" पूजा ने सहर्ष मेरी बात मान ली। हम दोनो ने मिलकर चायपान किया। पूजा उठ कर जाने लगी तो मैंने कहा, "पूजा कल शनिवार है, इस मकान मे मेरा आखिरी दिन। परसो यह मकान मुझे खाली करना ही पड़ेगा। तुम्हे याद है न पूजा।" पूजा ने बहुत ही लापरवाही से कहा, "याद है सर, खूब याद है। और आपको भी याद है न कल हम दीदी को बुलाकर लायेंगे। हमारा वायदा जो है सर।"

मैं फिर भी असमजस मे पड गया। मै आरती का पति होकर उसे बुलाने की सोच भी नही सकता। फिर ये दीदी को कौन से जादू से बुलाकर ले आएगी। खैर ' लडकी के आगे जिद करना शोभनीय नही होता। मैंने उसकी बात का प्रतिकार नही किया, प्रतिवाद भी नही किया। चुपचाप कमरे का दरवाजा बन्द करके आने वाले कल की समस्या पर सोचने लगा।

जैसे और दिनो की सुबह होती है, उस दिन शनिवार की भी सुबह हुई, जो आगे जाकर इतने बडे अनर्थ का कारण बनी। घटनाओ की विवेचना और विश्लेषण तो कर सकते है, किन्तु उन्हे रोका नही जा सकता। सुबह होने को भी मैं नहीं रोक सकता था। सुबह हुई तो दोपहर को भी होना था, दोपहर भी हुई। शाम के चार बज गये। मकान मालिक छ बजे की बस से पहुँच रहे हैं। आसमान मे बादलो का घटाटोप छा रहा है। सावन का महीना, बरसात का सबसे प्यारा मौसम होता है और बीकानेर का सावन तो राजस्थान की लोक कहावतो मे भी अमर है, "मियाले सीकर भलौ, उन्हाले अजमेर, सदा सुरगो मेडतो सावन बीकानेर।

इस लोकोक्ति को मैंने अब तक पढा भर तक था। आज इसकी वास्तविकता को भी देख रहा था। जैसे बीकानेर के पुराने लोग कहते है, यहाँ अपेक्षाकृत बरसात कम ही होती है, किन्तु उस वर्ष इन्द्रदेव की कृपा बीकानेर पर कुछ अधिक ही हुई थी। म मन ही मन डर रहा था यदि बरसात शुरू हो गई तो बस स्टैण्ड कैसे पहुचूँगा। मकान मालिक आ रहा है उसका अपना यहाँ कोई भी तो नही है। अकेला ही आ रहा है। मै उसके मकान मे रहता हूँ तो कम से कम उसकी अगवानी तो करनी ही चाहिए। मकान मालिक को भोजन-व्यवस्था भी रात्रि मे तो मुझे ही करनी चाहिए। सुबह मैं अपने रास्ते पर निकल पड़ूँगा। वह अपने रास्ते पर।

मैंने रसोई घर मे भोजन के सारे सामान की तैयारी जुटा रखी थी। ताजा सब्जियाँ ताजा आटा, सारे मिर्च मसाले, घी, तेल वगैरह-वगैरह। मकान मालिक के आते ही उसे पहले चाय बना कर पिला दूँगा। रात को हाथ म बनाकर खाना खिला दूँगा। अपनी सारी मजबूरी भी समझा दूँगा। शायद है, मेरी मजबूरी और हकीकत देखकर उसका मन भी पसीज जाए। आखिर वह इन्सान ही तो है। वैसे मैंने उसका बिगाडा भी क्या है ? इसी उम्मीद मे कि शायद मकान मालिक मेरी मजबूरी को समझ जायेगा। न तो मैंने अपना सामान सहेजा था न विस्तर ही बाँधा था। सामान सारा वैसे ही अस्त-व्यस्त पडा हुआ था। मेरे पास ले-देकर दो खटिया थी वह भी पडौसी से माँगी हुई। एक पर मेरी बूढी माँ सोती थी, दूसरी पर मैं और आरतो। आज मकान मालिक आ रहा है तो कोई बात नही। एक कमरे मे उसकी खटिया लगा देंगे। एक कमरे मे मैं सो जाऊँगा।

मैं सारे सामान को व्यवस्थित कर स्टोव पर चाय का पानी रख कर दूध लाने कमरे मे गया तो मेरे दरवाजे पर टकोरने की आवाज हुई। मैं मन ही मन झुँझलाया। इस असमय मे कौन आ टपका। दरवाजा खोला तो हक्का-बक्का रह गया। घडी मे ठीक चार बजे थे। मेरे सामने पूजा खडी थी। पूरी तरह से पूजा चक्रवर्ती। आज उसने सलवार कुर्ता के बजाय साडी पहन रखी थी। साडी मे पूजा इतनी खूबसूरत लग सकती है, यह मैंने कभी कल्पना भी नही की थी। वही गुँथी हुई वेणी, उसमे महकता गुलाब का ताजा फूल। हाथो मे किताब, कापियाँ। अगर उसके हाथ मे ये किताब कापियाँ नही होती तो पूजा इस समय पूर्ण युवती लग रही थी। यौवन मे सराबोर।

मैं एकटक पूजा को देखता रहा। उसने ही मुझे टोका, "सर क्या अन्दर आने के लिए नही कहेगे। देखिए बाहर हल्की-फुल्की बूँदाबाँदी हो रही है मैं भीग भी तो रही हूँ।" अरे! सचमुच मे बाहर हल्की-हल्की बरसात शुरू हो गई थी। मेरा ध्यान उधर गया ही नही। मैने मुस्कराकर पूजा से कहा, 'बाहर क्यो खडी हो, अन्दर आओ न।" मैं पूजा को अन्दर ले आया। वह सीधी रसोईघर मे गई। चाय बनाकर मुझे पिलाई, उसने स्वय ने चाय पी।

पूजा तुम्हे तो पता है अभी छ बजे मकान मालिक आ रहे है। तुम्हे तो पता ही है, मुझे उ हे लाने बस स्टैण्ड तक जाना है। इसलिए म आज तुम्हे पढा नही सकूँगा। तुम व्यर्थ मे ही बरसात मे परेशान हुई। मैने चाय समाप्त कर पूजा से कहा। पूजा ने भी तब तक अपनी चाय समाप्त कर ली थी। उसने प्याली एक तरफ रखते हुए कहा, 'पढना किसे है सर।

आपके मकान मालिक आ रहे हैं इसीलिए तो आई हूँ। आज पढ़ाई की छुट्टी।"

मैं समझा नहीं पूजा। तुम्हारी बात को बिलकुल ही नहीं समझा। तुम परिस्थिति की गम्भीरता में क्यों नहीं लेती। यह कोई पहेलियाँ बुझाने का समय नहीं है। मैंने अपनी शंका दुहराई।

सर मैं सब समझ रही हूँ। मैंने आपसे वादा किया था, मैं दीदी को बुला लूँगी। यह न मेरे लिए सम्भव था, न आपके लिए न दीदी के लिए। सोच समझकर मैंने यह तय किया कि मकान मालिक ने दीदी को देखा थोड़े ही है। आपने ही तो उस दिन बतलाया था दीदी के आने के बाद तो मकान मालिक यहाँ एक बार भी नहीं आये। वे आज पहली बार यहाँ आ रहे हैं। वे मुझे कतई नहीं पहचान पायेंगे। कहोगे तो घूँघट कर लूँगी। आप लोगों के ऐसा रिवाज भी तो है। कहेंगे तो सिर पर साड़ी का पल्ला डाल लूँगी। कुछ घण्टों के अभिनय से आपकी व्यवस्था बनी रह सकेगी। यदि आपका हित होता है तो मुझे मकान मालिक दो घण्टे यदि आरती दीदी ही समझ लेगा तो क्या नुकसान है। पूजा की यह बात सुनकर मेरा रोम-रोम सिहर उठा। नादान लड़की, यह क्या गजब ढा रही हो। इसके परिणाम को भी सोचा है। मैं मन ही मन काँप उठा।

मेरे पास बहुत देर तक सोचने का समय नहीं था। दो ही रास्ते थे। या तो जैसा मैं कहूँ, पूजा मान ले और चुपचाप आई वैसे ही लौट जाय। या पूजा जो कुछ कह रही है, उसे मैं मान लूँ। मैं मकान मालिक को बस अड्डे से घर तक ले आऊँ। आते ही पूजा से परिचय करा दूँ। यह मेरी पत्नी है। श्रीमती

आरती यादवेन्द्र। फिर पूजा उर्फ आरती हम दोनों के लिए चाय बनाकर ले आये। रात्रि को भोजन समाप्त करने के बाद जब मकान मालिक सो जाय तो बाहर के दरवाजे से पूजा को मैं उसके घर तक जाकर पहुँचा दूँ। सुबह होते ही पूजा फिर हमारे घर अभिनय करने के लिए आ जाए।

यह सब कुछ बडा अटपटा लग रहा था, किन्तु पूजा एकदम अडी हुई थी। क्या होता है सर, आपको मकान नही बदलना पडेगा। मैं अभिनय मे कही भी गलती नही करूँगी। जरूरत पडेगी तो आपके मकान मालिक से बीच-बीच मे आपकी भाषा मे भी बोल लूँगी। मुझे इतनी राजस्थानी भाषा तो आती ही है। यह सब कुछ सम्भव नही था। यदि पूजा के पापा और मम्मी यहाँ होते तो कुछ भी सम्भव नही था। न पूजा साडी पहन कर मेरे घर आती, न मैं उसे अभिनय करने की स्वीकृति देता और ना ही यह घोर अनर्थ होता, जिसने इस कहानी को ज म दिया, आगे की कहानी को जन्म दिया, जया की कहानी को जन्म दिया, इस पत्र का कारण बनी, जो इस समय भी मेरे हाथ मे पडा हुआ है।

पूजा के पापा और मम्मी पिछले रविवार से दिल्ली गये हुए थे। मम्मी को अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान सस्थान मे चैक अप के लिए जाना जरूरी था। अपाइन्टमेन्ट हो गया था। बिना पापा के मम्मी अकेली कहाँ जाती। पूजा अपने माँ-बाप की इकलौती और लाडली बेटी थी। जवान भी। यह बात नही है कि उसके माँ-बाप को बेटी की जवानी का ध्यान नही था, किन्तु पूजा उनकी आँखो का सपना थी। पूजा पर उन्हे पूर्ण विश्वास था, इसलिए बूढी आया पर विश्वास करके, दोनो पूजा को उसके

हवाले कर चले गये थ। उनके अभी सप्ताह-भर तक लौटने की सम्भावना भी नही थी।

कल ही पापा का पत्र आया था। उन्होंने पूजा को लिखा था। सब ठीक ठाक है। एक सप्ताह बाद वे लौट आयेंगे। मम्मी पापा को आया पर विश्वास था और आया को पूजा पर विश्वास था। विश्वास के भरोसे यह दुनिया ही टिकी हुई है। नेता को अपने मतदाताओं पर विश्वास है अभिनेताओं को दर्शकों पर विश्वास है मुझे आप पर विश्वास है, आपको मुझ पर विश्वास है। इसी तरह से सबको सब किसी पर विश्वास है।

मैं पूजा के अभिनय से आश्वस्त होकर मकान मालिक को लिवाने बस स्टैण्ड पहुँच गया था। बस सही समय पर आ गई थी। आसमान मे बादलो का घटाटोप वसा ही छाया हुआ था। शाम होते-होते बरसात ने भयंकर रूप धारण कर लिया था। सडक पर घुटनो तक पानी भर आया था। हम लोग एक तांगे मे सवार होकर घर पहुँचे। सामान तो विशेष कुछ था नहीं, फिर भी हम दोनो काफी भीग गये थे। सारे रास्ते मैंने मकान मालिक से कोई बातचीत नही की। न ही उसने मेरे से कुछ पूछा। ऐसे लग रहा था, मानो बहुत सारे प्रश्न उसके मानस मे घुमड रहे है। घर पहुँचते ही बरस पडेगा।

घर पहुँचने पर मैंने दरवाजे पर टकोर दी। सिर पर साडी का पल्लू डाले, आरती बनी पूजा ने दरवाजा खोला और दोनो हाथो को जोडकर मकान मालिक से उसने नमस्कार किया। पूजा को देखकर मकान मालिक भी दंग रह गया। यह क्या? उसके पास तो शिकायत थी कि मास्टर के पास उसकी पत्नी रहती ही नहीं है, वह तो अकेला ही रहता है। एक क्षण को तो पूजा को मैं भी नही पहचान पाया था। मेरे जाने के बाद उसने

पता नही कहाँ से ढूँढ-ढाढ कर अपने माथे पर विन्दिया भी लगा ली थी, अब तो वह पूर्ण गृहस्थ शादीशुदा लडकी लग रही थी।

पूजा ने तौलिया बुढऊ के आगे करते हुए कहा, "अरे रे आप तो बरसात मे एकदम भीग हो गये। कुछ देर वही रुक जाते। देखिये न कितनी तेज बरसात हो रही हे। मै तो यहाँ अकेली डर रही थी।" जब नाश्ता और चाय लेकर पूजा दुबारा कमरे मे आई तो बुड्ढे को पूर्ण विश्वास हो गया कि शिकायत झूँठी थी। किसी सिरफिरे ने मकान स्वय किराय पर लेने के लिए झूँठी शिकायत कर दी होगी। कितनी अच्छी लडकी है। कितनी सेवा कर रही हे। मै और मकान मालिक चाय-नाश्ता करके इधर उधर की गपशप करने लगे। मौसम को लेकर ही हमारी चर्चा विशेष रूप से हो रही थी। न तो मकान मालिक ने अपनी शिकायत दुहराई, न मैंने ही उसे कुरेदा। मुझे पडी भी क्या थी। इसी बीच पूजा दो वार आकर हमे खाने के लिए टोक गई थी।

खाना खाते-खाते मकान मालिक ने कहा, 'मास्टर कितने भाग्यशाली हो, जो ऐसी लडकी वहू के रूप मे मिली ह।' 'सब ऊपर वाले की कृपा है सेठजी। कहकर मैने बात को टाल दिया था।

मैंने और मकान मालिक ने खाना खा लिया था। खाना खाकर हमारा मकान मालिक एक कमरे मे सो गया था। उसे जल्दी सोने की आदत थी। पूजा भी खाना खा चुकी थी। मने वाहर निकलकर देखा तो बरसात प्रलय का रूप ले चुकी थी। सडको पर तीन-तीन, चार चार फुट पानी भर गया था। नीचे के मकान पानी मे डूबने लगे थे। बरसात थी जो रुकने का नाम ही नही ले रही थी। जिस पर यह नई कॉलोनी। निर्माणाधीन

नई कॉलोनी । जगह-जगह निर्माण का सामान बिखरा पड़ा है । पूरी नालियाँ भी नही हैं । पूरी सडक व रास्ते पानी से भरे हुए तालाब से लग रहे थे ।

मूसलाधार वर्षा शहर पर कहर ढा रही थी । मैं सिर से पाँव तक काँप उठा । अब क्या होगा, अब इस मूसलाधार बरसात मे मैं पूजा को घर तक कैसे छोड कर आऊँगा । किधर से जाऊँगा । सुबह वापस पूजा चाय के समय कैसे पहुँचेगी । अगर नही पहुँचेगी तो सारा रहस्य ही खुल जायेगा, और यदि वास्तविकता का पता लग गया तो यह बुड्ढा मुझे निश्चित ही पुलिस के हवाले करके आयेगा । न मुझे कोई मकान ढूँढना पडेगा, न सामान ले जाना पडेगा । कुछ भी नही सूझ रहा था । मैं चुपचाप सडक की तरफ देखे जा रहा था । मुसीबत कभी अकेली नही आती महाशय, उस रात भी नही आई । यदि बरसात तेज नही आती तो मैं पूजा को उसके घर पहुँचा आता । यदि ऐसा हो सकता तो यह अनर्थ कभी नही होता कभी नही होता महाशय । देखते-देखते बिजली गुल हो गई थी । अब तो पूरा शहर पानी और अंधकार मे डूब चुका था, जिससे उबरने का तत्काल कोई साधन नजर नही आ रहा था ।

पूजा ने पास आकर पूछा—अब क्या होगा सर ?
जो ईश्वर को मंजूर है, वही होगा ।
मैं घर कैसे जाऊँगी ?
कहो तो इस पानी मे धकेल दूँ । बहते-बहते पहुच जाओगी ।
मजाक क्यो करते हैं, सर, कोई उपाय निकालिए न ।
नादान लडकी ! किसने कहा था तुम्हें आरती बन कर मेरी पत्नी का अभिनय करने के लिए । क्या

मुझे पूरे शहर में कोई मकान मिलता ही नही ?
ऐसा क्यो कहते हैं सर, मैंने तो आपके भले के लिए ही किया था।
भाड मे जाय ऐसा भला। मुझे मकान ही नही, लगता है यह शहर ही छोडना पडेगा।
तो छोड देना सर, इसमे गुस्सा होने की कौन-सी बात है।
छोड देने की बच्ची, अगर रात-भर हमे इसी कमरे मे साथ-साथ रहना पड गया तो इसका परिणाम जानती हो क्या होगा ?
कोई उपाय निकालिए न सर।
क्या उपाय निकालूँ ? क्या ऐसी बातो का उपाय निकालना इतना आसान काम होता है।
फिर भी, कुछ तो करना ही होगा, सर।
करना यही है जब तक बरसात नही रुकती है, तुम चुपचाप खटिया पर जाकर लेट जाओ। बरसात रुकते ही मैं तुम्हे घर पहुँचा दूँगा।

बरसात को उस रात नही रुकना था महाशय, नही रुकी। रात भर पानी गिरता रहा। सडक पर पानी की नदियाँ बहने लगी। मैंने कहा न महाशय, इस पानी ने मेरे जीवन मे अनेको बार उथल-पुथल मचाई है। उस रात भी मचाई थी। पूजा चुपचाप खटिया पर जाकर लेट गई तथा नीद लेने का उपक्रम करने लगी। मैं खिडकी खोलकर सडक पर गिरते और बहते पानी को देखता रहा। बिजली पुन आ गई थी। कमरे मे बल्ब की हल्की हल्की नीली रोशनी बिखर

रही थी। बिजली बीच-बीच मे आँख मिचौली कर रही थी। अगर इतना ही होकर रह जाता तो कुछ भी तो आपको सुनाने लायक नही था।

बरसात तो हर साल ही होती है। किसी-किसी साल बहुत ज्यादा बरसात भी होती है। रात भर मूलाधार पानी गिरता है तो सडकें एव रास्ते भी पानी से भर ही जाते हैं। इसमे कुछ भी तो अजीब बात नही थी, जो आपको इस तरह रात के सन्नाटे मे सुनाई जाती, किन्तु अजीब बात थी, जरूर ही अजीब बात थी। जो आपको बताने जा रहा हूँ। न तो आदमी देवता ही होता है, न भगवान ही। आदमी सिर्फ आदमी ही होता है। कहते हैं आदमी की कमजोरी, आदमी के जन्म के साथ ही जन्म लेती है। मैं भी एक साधारण आदमी ठहरा।

रात का सन्नाटा। कमरे मे मैं और पूजा दो ही थे। बरसात का मौसम। गहराती रात का वातावरण। तेज होती धडकन और धौंकनी की तरह उठती-बैठती सासें। मेरे मन और मस्तिष्क मे नैतिकता और अवसर के बीच द्वन्द्व छिड गया था। मेरी नैतिकता मुझे अध्यापक हो बने रहने के लिए प्रेरित कर रही थी, किन्तु दूसरी तरफ पूजा के साथ इस तरह एकान्त में रहने का अवसर मेरे यौवन को ललकार रहा था। उम्र की कुछ पगडण्डियाँ होती ही खतरनाक है और उस रात मैं उन्हीं मे से किसी एक खतरनाक मोड पर जाकर खडा हो गया था। पीछे मुडना सम्भव नही था। आगे बढने की हिम्मत नही हो रही थी। इसी उधेड-बुन मे कभी खिडकी खोल लेता और कभी बन्द कर लेता।

पूजा अचानक खटिया से उठ कर मेरे पास आकर खडी हो गई। उसने खिडकी के सीखचो को पकड लिया था। मैंने उस रात महसूस किया महाशय, पूजा की साँसे भी मेरी ही तरह तेज-तेज चल रही थी। पूजा के सामीप्य से मै सिर से पाँव तक सिहर उठा। उस क्षण मेरे लिए स्वय को सभालना भी मुश्किल पड गया। स्थिति पूजा की भी अच्छी नही थी। यौवन शुरू मे गूगा होता है। जब वह बोलना सीखता है तो सबसे पहले आँखो के माध्यम से बोलना शुरू करता है। पूजा चुपचाप मेरे पास खडी थी। न वह कुछ बोल रही थी न मै कुछ बोल रहा था।

हमारे दोनो के ही मन मे द्वन्द्व मचा हुआ था। पूजा मेरी शिष्या थी, मैं उसका गुरू। गुरू और शिष्या का सम्बन्ध बहुत ही नाजुक होता है बहुत ही पवित्र। इसी पवित्र रिश्ते ने हम दोनो को काफी देर तक मौन रखा। हम दोनो ही चुपचाप बाहर सडक की तरफ बरसते पानी को देखते रहे। अगर यो ही खडे-खडे हमे सुबह हो जाती तो उस रात्रि को मैं याद भी नही रखता, लेकिन होना या न होना सब कुछ दूसरे के द्वारा नियन्त्रित है। मनुष्य का उसमे किंचित् मात्र भी हाथ नही होता है। बरसात अचानक और तेज हो गई। ऐसा लगने लगा मानो प्रलय ही हो जाएगी। अचानक आकाश मे बहुत ही जोर से बादलो की गर्जना हुई तथा बिजली कौंधी।

उसी गर्जना के साथ सडक के उस पार ठेके से बन रहा सरकारी डिस्पेंसरी का अधूरा भवन धराशायी हो गया। भवन के गिरने से जोरदार धमाका हुआ। अचानक पूजा चौंकी और भयभीत हो कर मुझ से लिपट गई। मैंने भी पूजा को दोनो हाथो से कस कर चिपका लिया। बहुत देर तक

हम दोना ऐसे ही खड़े रहे। पूजा ने सिर उठा कर मेरी तरफ देखा। मैं उसकी आँखो की मादकता को भेन नही पाया। पूजा की आँखो की भाषा को मेरी आँखो ने सहज ही समझ लिया था। मैं और पूजा कब चुपचाप खटिया पर आ कर लेट गये, कुछ भी याद नही है। सुबह उठे तो पूजा की हेयरपिन खटिया पर पडी मिली थी।

हम दोनो के दिलो मे भयकर तूफान मचा हुआ था। महासागर की मछली प्यास के मारे छटपटा रही थी। पूरे के पूरे महासागर मे तूफान मचा हुआ था। सारा शहर पानी मे डूब रहा था। भीगती रात मे, हम दोनो, मैं और पूजा कब सोकर उठे, हमे कुछ भी याद नही। बस इतना ही याद है, जब हम सोकर उठे तो दोनो एक ही खटिया पर थे। सच-सच कह रहा हूँ महाशय, उस रात से पहले मैंने आरती में हमेशा काजल को ही खोजा है और उस रात मैंने पहली बार पूजा मे आरती को खोजा। सारी रात पूजा मे आरती को ही खोजता रहा।

महाशय, इसे कहते है करता कोई है, भरता कोई है। यदि डिस्पेन्सरी भवन का ठेकेदार माल मे ज्यादा मिट्टी नही मिलाता तो उस रात तेज बरसात से भी निर्माणाधीन भवन नही गिरता, यदि वह भवन नही गिरता तो जोरदार धमाका नही होता और जोरदार धमाका नही होता तो खडी-खडी पूजा नही चौकती, यदि पूजा नही चौकती तो वह मुझ से कतई नही लिपटती और पूजा मुझसे चौककर नही लिपटती तो मेरी पूजा को भी छूने की भी हिम्मत नही पडती, यदि यह सब नही होता तो मेरे और पूजा के बीच यह सब घटित नही होता जो अनायास ही उस रात घटित हो गया था। अप्रत्यक्ष रूप से देखा जाय तो इस

अनर्थ का कारण वह ठेकेदार ही बना, इतने बड़े अनर्थ का कारण, जिसकी कहानी मैं आपको सुनाने जा रहा हूँ। उस अनर्थ की कहानी के माने इस पत्र की कहानी, जो इस समय भी मेरे हाथ मे पडा हुआ है।

सुबह तूफान थम चुका था। मकान मालिक चाय, नाश्ता करके, वापस जयपुर जाने की तैयारी कर रहा था। मैं मकान मालिक को बस अड्डे पर छोडकर वापस घर पहुँचा तो पूजा मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। रात को घटना पर न उसे दुःख था, न आश्चर्य। मैं मन ही मन पश्चाताप मे जल रहा था, लेकिन अब बहुत देर हो चुकी थी। लौटकर आने की स्थिति और समय नही रहा था। पूजा ने आरती बनने का अभिनय करके, मेरा मकान तो बचा लिया था, किन्तु मेरा असली घर और शहर छुडा दिया था। अब मेरे लिए न तो पूजा को इस घर मे रख कर रहना सम्भव था और न पूजा के बिना रहना सम्भव था। हम दोनों ने मिल बैठ कर फिर एक बार परिस्थितियो से समझौता किया। यहाँ रहेगे तो बदनामी ज्यादा ही होगी। बेहतर है, हम दोनो ही यह शहर छोड कर चले जाएँ। कही दूर चले जाएँ। बिहार मे हजारी बाग के पास एक बडी फैक्ट्री मे मेरे एक पुराने और विश्वस्त मित्र नौकरी कर रहे थे। बचपन के मित्र। हम दोनो ने यही तय किया, वही चलते है। वहाँ जाकर कोई न कोई नौकरी की जुगाड बिठायेंगे।

और उसी दिन शाम को हम दोनो, मैं और पूजा बीकानेर मेल से हजारीबाग के लिए रवाना हो गये। साँझ के झुरमुटे मे गाडी शहर छोडकर भागी जा रही थी। यादो का एक लम्बा सिलसिला पीछे छूटता जा रहा था। मेरी बूढी बीमार माँ, हाथ

टूटा हुआ बाबा, राज के विवाह का कर्जा, सब पीछे छूट रहे थे। पूजा के मम्मी पापा, बीमार माँ की हालत मब की चिंता हम छोड़े जा रहे थे। यदि दिल्ली के पहले कोई मिल गया तो सीधा बहाना था, पूजा की माँ से मिलने जा रहे है। वह अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान सस्थान मे भर्ती जो है।

गाडी अपनी पूरी रफ्तार से दौडी जा रही थी। ज्यो-ज्यो रात का सन्नाटा गहराता जा रहा था, गाडी के चलने की आवाज और तेज-तेज सुनाई पड रही थी। बीकानेर से चलने के बाद राजलदेसर, फिर रतनगढ, चरू और लुहारू। सारे स्टेशन जैसे गाडी ने एक साँस मे पार कर लिए थे। लुहारू जकशन पर जब गाडी पहुँची तो रात के दो बज चुके थ। स्टेशन के एक तरफ रोशनी थी, दूसरी तरफ अधेरा। मैंने चुपचाप डिब्बे से उतर कर दो सकोरे चाय के लिये एक मेरे लिए, दूसरा पूजा लिए। पूजा की आँखो मे नीद घिर रही थी। मैंने उसे थोडा सचेत किया। चाय पिलाई। बीकानेर से गाडी चलने के बाद हम करीब-करीब चुप ही रहे। पडौसी यात्रियो को परेशानी थी कि हम झगडकर चले है या गूगे-बहरे है। गाडी फिर चल दी। डिब्बे मे रोशनी नही थी। घुप्प अधेरा। पूजा नीद मे ऊँघने लगी। सोने की जगह नही थी। पूजा ने दो-चार झटके खाकर निढाल होकर अपना सिर मेरी गोद मे टिका लिया। मेरा एक हाथ पूजा की पीठ पर था, दूसरा पूजा के बालो को सहला रहा था। मुझे लग रहा था पूजा का और मेरा जन्म-जन्मान्तर का साथ है। जिस घडी ऐसा लगने लग मनुष्य का प्यार चौगुना हो जाता है।

पूजा गजब साहसी लडकी थी। इसके पहले मैंने इसके साहस को कभी नही देखा था। चुपचाप घर से चल कर आती

पूरे एक घण्टे पढती फिर चुपचाप घर की ओर। न हँसी, न मजाक। कभी-कभी आरती से ठिठोली अवश्य कर लिया करती थी। पूजा जो आरती के सामने छुई मुई बनी रहती थी आज मेरी गोद मे सिर रखकर चलती गाडी मे सबके सामने सुख से सो रही थी। उसे न भय था, न सकोच। मेरा पुरुष मन बार बार घबरा रहा था। पूजा ने कल रात सच ही तो कहा था। मैं तो मिट्टी के खिलौने से भी कमजोर लगता हूँ। स्त्री और पुरुष मे यही मूल अन्तर है। चरम सामीप्य के क्षणो मे पुरुष पहले दिलेर रहता है, फिर कमजोर हो उठता है, स्त्री पहले पूरा प्रतिरोध करती है, सोचती, विचारती है, घटित होने के बाद दिलेर बन जाती है।

पूजा लडकी होकर भी दिलेर थी। गाडी सरपट भागी जा रही थी। लुहारू से चलने के बाद महेन्द्रगढ आया फिर रिवाडी, फिर गुडगाँव और अन्त मे दिल्ली। दिल्ली माने दिल्ली जक्शन। महाशय, ऐसे तात्कालिक क्षण बहुत ही कम आते है जब आदमी कुछ ही क्षणो मे सब कुछ प्राप्त कर लेता है। उस रात का वह क्षण ऐसा ही क्षण था। मै पूजा को बाहो मे भर कर खटिया पर धम्म से जा गिरा था। उसके बाद क्या हुआ यह सब बताने की आवश्यकता नही। आरती ने एक ही रात मे अपना सर्वस्व खो दिया था, पूजा ने उसी रात सर्वस्व प्राप्त कर लिया था।

मैंने सुबह आँखे खुलते ही पूजा से पूछा था, "हम तुम्हारी दीदी को क्या मुँह दिखायेंगे पूजा। उसके साथ हम दोनो ने विश्वासघात किया है।" पूजा ने बहुत ही सहज भाव से उत्तर दिया था, "किसने किसके साथ विश्वासघात किया है यह सोचने का अवसर अब नही रहा। पीछे मुडकर देखने पे आगे

ठोकर लगने की सम्भावना बढ जाती है। रही बात मुँह दिखाने की। बुद्धिमानी इसी मे है कि मम्मी-पापा के आने से पूर्व इस शहर को छोड दें। यही हुआ महाशय। वहाँ तो मैं किराया का घर भी छोडने को तैयार नही था और वहाँ उस मकान के मोह ने इतना बडा नाटक करवा दिया। अन्ततः हम शहर ही छोड कर भाग खडे हुए।

दिल्ली जक्शन पर हम प्लेटफाम पर उतरे तो वहा कोई भी परिचित नजर नही आया। थोडी सांस मे सांस आई। पूजा ने अपने चेहरे पर बडे मे स्मोक्ड ग्लास के गोगलस लगा लिए थे। अब तो उसका और भी रौब बढ गया था। हम लोग कालका मेल पर जाकर जगह तलाश करने लगे। बडी मुश्किल से हमें बैठने भर को जगह मिली। कालका मेल ठीक आठ बजे दिल्ली जक्शन मे हावडा के लिए रवाना हुई। दिल्ली जक्शन से आसनसोल के बीच कई स्टेशन आये। कई प्रान्त बदल गये, लेकिन उन सबको बताने का कोई विशेष प्रयोजन नही है। व्यर्थ की बात बताने लिए समय भी तो नही। कुछ ही घण्टो मे सुबह होने ही वाली है। आश्रमवासी जाग गये तो हमारी कहानी अधूरी ही रह जायेगी इसलिए बहुत-सी बातें मुझे बीच-बीच मे छोडनी ही पडेंगी। जितना यथेष्ट है, उतना जान लेना काफी होगा। आसनसाल से गाडी बदल कर हम गोमिया स्टेशन पर पहुँचे थे, वहाँ से पैदल चल कर उस फैक्ट्री मे, जहा मेरा मित्र काम करता था।

हम जब फैक्ट्री मे पहुँचे तो रात हो चुकी थी। पूजा ने साडी पहन रखी थी ताकि वह पूर्ण रूप से वयस्क लगे। अनजान जगह मे किसी को किसी प्रकार का शक न रहे इसके लिए हम

दोनो ही पूणरूप से प्रयत्नशील थे। रेल मे सफर करने के कारण हम दोनो ही अस्त-व्यस्त हो गये थे। हमारे सपने टूटते नजर आ रहे थे। यदि इस फैक्ट्री मे कोई परिचित मिल गया तो घोर अनथ हो जायेगा। यदि यहाँ मेरे मित्र नौकरी का जुगाड नही कर सके तो उससे भी बडा अनर्थ हो जायेगा। यही शका मुझे और पूजा को खाये जा रही थी। न तो इस पहाडी रास्ते पर चलने के लिए हम दोनो ही अभ्यस्त थे और न ही इस जगह से परिचित ही। सबसे बडी सुविधा एक ही थी कि मेरे मित्र ने भी मेरी पत्नी आरती को कभी नही देखा था, इसलिए कोई विशेप खतरा नजर नही आ रहा था।

आदमी सोचता कुछ है तो हो कुछ और ही जाता है। ऐसा बहुत बार होता है, महाशय। हमारी दो शकाएँ तो पहले से ही थी, किन्तु इस बार हमने जिस स्थिति का सामना किया, वह तो हमे तोड देने वाली थी। वहाँ खोजते-खोजते मित्र के क्वाटर के पास पहुँचे। दरवाजा पर टकोर दी। अन्दर से एक अधेड सी स्त्री आई और पूछने लगी, कहिये किन से काम है । मैंने मित्र का पता आगे बढा दिया। स्त्री ने कहा उनका तो हैड आफिस मे कलकत्ता ट्राँसफर हो गया। हम कल ही यहा इस क्वाटर मे आये हैं।" हमारे पास कहने के लिए कुछ भी नही था। दोनो एक दूसरे की तरफ देख रहे थे। मैंने मन ही मन भगवान से कहा—"हे भगवान ! प्यार करके भागने वाले लडके-लडको की यही दशा होनी चाहिए, ताकि कोई प्यार करके घर नही छोडे।" मन ही मन मे पूजा पर गुस्सा कर रहा था, 'मूख लडकी ! तुम्हारे पीछे मैंने सब कुछ गँवा दिया, पुर्खों की इज्जत, अच्छी भली नौकरी, आरती-सी पत्नी, सब-कुछ मटियामेट हो गया, सिफ तुम्हारे पीछे।'

कहना नही होगा महाशय, हम दोनो रातभर उसी क्वार्टर मे उसी परिवार के साथ रुके। आगे की कहानी भी बड़ी लम्बी है। मुझे उस फैक्ट्री मे मेरे मित्र की सिफारिश पर छोटी-सी नौकरी भी मिली, सिर छिपाने के लिए एक क्वार्टर भी। बहरहाल ये सारी बाते इतनी महत्त्वपूर्ण नही है, जितनी आगे की कहानी और इसलिए मैं आपको वही सुना रहा हूँ।

फैक्ट्री बहुत ही प्राकृतिक वातावरण मे बनी हुई थी। एक तरफ दामोदर नदी का मुहाना। तीन तरफ छोटे-छोटे पहाड और बीच मे फैक्ट्री। इस फैक्ट्री को बने अभी मुश्किल से 2-3 वर्ष ही हो पाए थे। शहर से यह स्थान काफी दूर था। आसपास के शहरो मे बोकारो एव चन्दननगर थे। बाजार नाम की चीज कोई थी ही नही। सप्ताह मे रविवार के दिन फैक्ट्री की गाडी बोकारा जाती, वहां से सब लोग आवश्यकतानुसार साग-सब्जी एव खाने-पीने का जरूरी सामान खरीद लाते। फैक्ट्री मे ही एक छोटी सी डिस्पेन्सरी थी। बीमार हो जाने पर दवा के नाम पर वहाँ का कम्पाउन्डर लाल पानी का मिक्स्चर पिलाता रहता था। अखबार ताजा तो क्या पुराने भी नही मिलते थे।

दुनिया के साथ सम्बन्ध रखने का एकमात्र साधन रेडियो था। अब रेडियो ही मेरी किताब थी, वही मेरा अखबार। खाली समय का मित्र भी वही था। सीमित साधनो मे आदमी की इच्छाएँ भी सीमित होकर रह जाती है। जो कुछ नही है, उसकी चिन्ता करने की अपेक्षा जो आसानी से उपलब्ध है उसका खुलकर उपभोग करने मे ही बुद्धिमानी है। कोई दिन मेरे लिए चन्दा एक सपना थी, काजल एक सपना थी। आरती टूटते हुए सपनो की झिलमिलाती भोर थी।

मैंने आरती से प्यार कभी नही किया, किन्तु उसे चाहा हमेशा। हर घड़ी, हर पल, बिना प्यार की चाहत, प्यास बन कर मेरी रग-रग मे समा गई थी।

आरती के बिना मैं कही न कही से कम क्षेत्र मे खाली था। उस समय हकीकत की आरती मेरे लिए सपना बन चुकी थी। खालीपन और भी बढ गया था। माँ-बाप पराये बन चुके थे। राज की स्मृति एक दर्द पैदा कर देती थी। उस समय पूजा ही मेरी पत्नी थी, वही सहेली और वही मित्र। आरती को मैं हजार प्रयत्न करके भी पत्नी से प्रेमिका नही बना सका था और पूजा को रात-दिन एकान्त मे साथ साथ पत्नी की तरह रख कर भी, प्रेमिका से पत्नी नही बना सका था। मेरे चाहने या न चाहने से कोई अन्तर पडने वाला नही था। एक समय था जब आरती मेरी बाहो मे होती और काजल मेरे सपनो मे। समय बदला तो आरती मेरे सपनो मे रह गई और पूजा मेरी बाहो मे। दोनो ही स्थितियों में मैं प्यासा ही रहा। जीवन मे सन्तोष और प्यार मे पूर्णता किसी को भी नही मिलती है महाशय। किसी एक को भी नहीं। इसलिए मुझे भी नही मिलनी थी, नही मिली।

आदमी जिस वातावरण मे रहने लग जाता है, शनै शनै उसी का अभ्यस्त बन जाता है। फैक्ट्री परिसर मे जो क्वार्टर हमे मिला था, वह छोटा ही था। कुल दो कमरे एक रसोईघर एक सामान घर इत्यादि इत्यादि, लेकिन उसमे एक विशेषता थी। क्वार्टर नदी के तट से सट कर ही बना हुआ था। सोने के कमरे का एक दरवाजा नदी की तरफ ही खुलता था। बरसात के मौसम मे नदी अपने पूर्ण यौवन पर थी। दिनभर दामोदर नदी हमारी नजरो के सामने कल-कल करती बहती रहती

कानों को भी बड़ा ही अच्छा लगता। ज्यों ज्यों रात गहरी होती जाती, नदी के पानी की कलकल ध्वनि गर्जन का रूप लेती जाती थी। रात को ऐसा लगता मानो नदी लगातार गर्जना कर रही है। बहुत बार तो ऐसा होता छपाक से पानी की लहरें हमारे क्वार्टर की सीढ़ियों से टकरा जातीं। बाहर नदी की गर्जना। भीतर मेरे और पूजा के दिलों में उठता तूफान।

कोई भी मौसम हो, कोई भी स्थान हो, यौवन का उद्दाम प्रवाह रोकने से नहीं रुकता। यह यौवन की स्वाभाविक गति है। पूजा जैसी मादक युवती को पाकर मेरा एकाकी यौवन और भी उद्दण्ड हो गया था। सोते, जागते, उठते, बैठते मेरी आँखों में पूजा ही पूजा घूमती रहती। पूजा जैसी अनुभवहीन लड़की ने यौवन को जिस रूप में समर्पित किया, वह अनिर्वचनीय था। आरती जैसी औरत को वर्षों वर्ष भोगने के बाद भी मुझे वह शरीर सुख प्राप्त नहीं हुआ, जो पूजा से एक रात में ही प्राप्त हो गया था, पहली ही रात में। पूजा समर्पण का पर्याय बन चुकी थी। पूजा के साथ मेरी ऐसी पटी मानो हमारा जन्म-जन्मान्तर का साथ रहा हो। आप यही तो सोचते हैं न महाशय कि साधु होकर मैं यह क्या कहानी सुना रहा हूँ, किस तरह बहक रहा हूँ। यह बहकना नहीं है महाशय। जीवन के यथार्थ को वर्णित करने में साधुपन कहीं भी आड़े नहीं आता। छुपाना साधु स्वभाव के विपरीत होता है। इस स्थिति में आपसे छुपाना भी क्या है महाशय। यह कहानी किसी सन्यासी की नहीं है, जो इस समय आप सुन रहे हैं। यह सन्यासी के उस जीवन की कहानी है जिस क्षण वह पूर्ण सांसारिक था, युवक था, प्रेमी था। पूजा के सामने था। पूजा की बाहों में था।

दूर कही मुर्गे ने पहली वाग दी । लगता है सूरज का रथ आसमान की सैर करने के लिए सज रहा है । आसमान को अब भी वादलो ने ढक रखा है। लगता है यह वरसात रुकने वाली नही है। सुवह होते ही चाहे वरसात कितनी हो तेज क्यो न गिरे, पूरे आश्रम मे हलचल मच जायेगी। उसके पहले ही मुझे यह कहानी समाप्त कर देनी है। आप यही तो सोच रहे हैं न कि अब शेष कहानो मे वचा ही क्या है। मैं आपके सामने बैठा हूँ। मेरा विगत आपने मेरे ही मुँह से सुन ही लिया, किन्तु ऐसी वात नही है महाशय । अब भी बहुत कुछ सुनना शेष है। अब भी आपको जया के वारे मे जानना शेष है। विना उसके जाने आप मेरी पूरी कहानी नही समझ पायेंगे। अगर मेरी कहानी नही समझ पायेंगे तो इस पत्र की कहानी भी नही समझ पायेंगे, जो इस समय भी मेरे हाथ मे पडा हुआ है।

पूजा की आस-पास के क्वार्टर वालो मे रुचि बिलकुल भी नही थी। खाली समय मे वह रेडियो सुनती रहती, कमरे का दरवाजा खोलकर बहती नदी को एकटक निहारती रहती। कभी-कभी कमरे से वाहर निकल कर एकदम नदी के बहते पानी के पास जाकर बैठ जाती । घण्टो बैठी रहती। फैक्ट्री मे काम करने वाले स्त्री-पुरुषो से मेरी थोडी-थोडी जान-पहचान हो गई थी। सुवह ठीक आठ वजे फैक्ट्री का सायरन वज उठता। सवसे पहले मजदूरो की हाजिरी होती, फिर काम शुरू। वीच मे खाने की छुट्टी। शाम को ठीक पाँच वजते ही छुट्टी का सायरन वजता तो सारे मजदूर ऐसे बाहर दौडते मानो कोई दौड की प्रतियोगिता और प्रतिस्पर्द्धा हो रही हो।

तीन दिन विलम्ब हो जाने पर एक दिन की मजदूरी काट ली जाती थी। फैक्ट्री का ऐसा ही नियम था। मेरी ड्यूटी

टाइम ग्राफिस मे थी। हाजिरी मुझे ही भरनी पडती था। हाजिरी के तत्काल बाद मैं अपनी कुर्सी पर आकर बैठ जाता। दोपहर के खाने के पहले मैं किसी भी मजदूर की अनुपस्थिति नही लगाता था। अगर कोई सुबह विलम्ब से भी पहुँचता तो मैं उसको हाजिरी करने की छूट दे देता था। मैं जानता था मजदूरो मे अधिकाश औरतें थी। उनमे बहुत-सी आदिवासी औरतें भी थी। वे पहले सायरन पर घर छोडती। पहाड के उस पार उनके घर थे। पूरा पहाड लाघ कर आना पडता। कुछ न कुछ विलम्ब हो जाना स्वाभाविक ही था।

एक दिन एक मजदूर दम्पत्ति ने मुझे छुट्टी होने के बाद अपने घर चलने का निमन्त्रण दिया। पहले तो मैं सकोच करता रहा फिर सोचा आदिवासी सही, आखिर हैं तो ये भी इन्सान हो। फिर ये लोग मेरी इतनी इज्जत करते हैं। मैंने दूसरे दिन उनके साथ उनके घर चलने की सहमति दे दी।

पूजा को मैंने उसी रात बतला दिया था, कल शाम हमे एक मजदूर दम्पत्ति के घर चलना है। पूजा बहुत प्रसन्न हुई थी। यही अकेले रहते-रहते वह घुटन महसूस करने लगी थी। दूसरे दिन फैक्ट्री की छुट्टी होते ही मैं क्वाटर मे लौटा तो पूजा सज-धज कर मेरे साथ चलने के लिए तैयार खडी थी। हाथो मे लाल रग की चूडिया, लाल बार्डर की हरे प्रिण्ट की साडी, वैसा ही ब्लाऊज। पीठ पर लहराती खुली केश-राशि माथे पर लाल रग बिन्दी। पूजा उस समय एकदम अप्सरा-सी रूपवती लग रही थी। यहाँ आकर उसका स्वास्थ्य भी बहुत अच्छा हो रहा था। मैंने मजाक करने के अदाज मे कहा, "मेनका आज कौनसे विश्वामित्र की तपस्या भग करने जा रही है।" पूजा ने तत्काल

जवाब दिया, 'रहे आप मास्टर के मास्टर ही। किताबी ज्ञान से आगे बढना ही नही जानते। मेनका की मुझ से तुलना कर रहे है, वह अप्सरा थी जो विश्वामित्र की तपस्या भग कर भाग गई हुई, यहाँ तो विश्वामित्र को भगाकर लाये है।" मैं अपनी बात पर लज्जित हो गया। पूजा ठीक ही कह तो रही थी। मै पूजा को भगाकर नही लाया था, पूजा ही मुझे भगाकर लाई थी।

हम दोनो मजदूर दम्पत्ति के साथ उनके घर को चल दिये। पहाडी के उस पार उनका घर था। घर क्या था बस सिर छुपाने की जगह भर थी। खपरैल के बने मकान, गोबर से लिपी हुई दीवारें एव आँगन। रोशनी की कोई व्यवस्था नही। हम दोनो के लिए आँगन मे एक खटिया डाल दी गई थी। मजदूर ने अपनी स्त्री से स्थानीय भाषा मे कुछ कहा। जिसका शायद आशय यही था कि मेहमानो के खाने-पीने के लिए लाओ। स्त्री ने अपनी सास से कहा। सास उस समय गोबर से चूल्हा लीप रही थी। उसने गोबर सने हाथो से ही गाय का दूध निकालना शुरू कर दिया। यह सब हमारे सामने ही हो रहा था। ताजा बिना गरम किये हुए दूध के दो कटोरे भर कर वह स्त्री हमारे पास आ खडी हुई, एक कटोरा मुझे थमा दिया, दूसरा पूजा को।

मुझे काफी सकोच हो रहा था, एक तो मैं कच्चा दूध पीने का आदी नही था, दूसरा दूध गोबर के सने हाथो से निकाला हुआ था। उसमे गोबर का हरा रग भी झलक रहा था। मैने पूजा की तरफ देखा। पूजा मेरी मन स्थिति समझ गई थी। उसने कटोरा मुँह मे लगाकर एक ही साँस मे खाली कर दिया। मजबूरन मुझे भी ऐसा करना पडा। मैंने बाद मे पूजा से पूछा भी

था, "तुमने वह गन्दा दूध क्यो पी लिया ?" उसका नारी सुलभ उत्तर था, "यदि हम उस दूध को नही पीते तो मेजबान का अपमान होता। वे भोले इन्सान है, हमारी मन स्थिति को नही समझ सकते थे, औरत औरत की भावना को बहुत जल्दी समझ लेती है, चाहे उनके बीच मे भाषा की कितनी ही बडी दीवार क्यो न हो। घर आये हुए अतिथि का सम्मान करना, गृहस्वामी के लिए जितना जरूरी है उतना ही जरूरी मेहमान के लिए आतिथ्य ग्रहण करना भी है।" पूजा इस बीच उस मजदूर औरत के साथ उसका पूरा घर घूम कर देख आई थी।

वापस चले तो थोडा अधकार हो गया था। पहाडी के नीचे तक मजदूर हमे छोडने आया। फिर मैदानी पगडण्डी आते ही हमने उसे वापस भेज दिया। पूजा बडी प्रसन्न नजर आ रही थी। एक तो बहुत दिनो बाद वह क्वाटर से बाहर किसी से मिलने निकली थी। दूसरे उस मजदूर दम्पत्ति का सरल एव निश्छल आतिथ्य पाकर वह बहुत ही प्रभावित हुई। न कोई औपचारिकता, न कोई दुराव-छुपाव। कसा सरल जीवन है, इन लोगो का। पूजा भावातिरेक मे डूबती इतराती चली जा रही थी। मैं उसके बराबर चल रहा था। पगडण्डी सकरी थी, इसलिए सुविधानुसार कभी पूजा को आगे होना पडता तो कभी मुझे उससे आगे चलना पडता। यह क्रम हम कई बार दोहरा चुके थे। मैंने पूजा से मजाक मे कहा, 'पूजा हमने फेरे लेकर शादी नही की है, इसलिए यह फेरे इस पगडण्डी पर आगे पीछे चल कर लेने पड रहे है।" पूजा ने चलते-चलते ही अपना सिर मेरे कधे पर टिकाते हुए कहा, "सर हम थक गये हैं, मजाक अच्छा नही लगता है।"

"पूजा यह रोज-रोज सर की क्या रट लगा रखी है। मैं तुम्हे घर से इतनी दूर ले आया हूँ। न मैं अब तुम्हारा अध्यापक हूँ, न तुम मेरी शिष्या। अब हम सिर्फ .''

"पति-पत्नी है, यही न।"

"बिलकुल ठीक कह रही हो पूजा।"

"यादवेन्द्र ? यह क्षण मेरे लिए, मेरे जीवन मे सबसे कीमती है। तुमने पहली बार मेरा पत्नी होना तो स्वीकारा। औरत के लिए यह क्षण कितना सुखदाई होता है।"

"पर पूजा।"

'ऐसा न कहो यादवेन्द्र। कुछ सम्बन्ध ईश्वर के घर से निश्चित होकर आते है, जैसे माँ-बाप, भाई-बहिन, बेटी-बेटा, रिश्तेदार इत्यादि। बाकी सम्बन्धो मे अधिकाश सम्बन्ध परिवर्तनशील होते हैं। कल के सर आज यादवेन्द्र बन जाय तो कुछ भी अनहोनी नही है। इतिहास ने इसे बहुत बार दोहराया है। मैंने सर से यादवेन्द्र तक की यात्रा तय करने के लिए अपना कौमार्य तुम्हे अर्पित किया, यौवन तुम्हे समर्पित किया। घर छोडा, पढाई छोडी, माँ-बाप छोडे। अब इतना अधिकार तो मेरा सुरक्षित रहने दो यादवेन्द्र। मैं तुम्हे नाम से पुकार सकूँ, सिर्फ इतना ही तो चाहती हूँ।"

"अधिकार तो औरत को हमेशा वरीयता से ही मिलता है, कम से कम हमारे देश मे तो।"

"ये किताबी बातें छोडो यादवेन्द्र। वास्तविकता के

ठोस धरातल पर खड़े होकर देखोगे तो पता चलेगा कि औरत के पाँव के नीचे की जमीन खिसक रही है। पाँव जमाये हुए केवल पुरुष ही खड़ा है। युग-युगान्तर से आज भी वैसे ही खड़ा है। अडिग, अविचल।''

''यह लाछन क्यो लगाती हो पूजा ? पुरुष जाति के प्रति ऐसा कहना उसका अपमान है। आज की सभ्यता एव समानता का अपमान है।''

''तर्क के लिए सब कुछ चल सकता है। बात वास्तविकता की कह रही हूँ। मान लो आज हम वापस घर लौट चले। तुम्हारे माँ-बाप तुम्हे देखते ही खिल उठेंगे उनका खोया बेटा मिल गया। आरती दीदी वैसे ही तुम्हारे स्वागत को तैयार मिलेगी। उसका सुहाग जो हो। तुम्हे धीरे-धीरे पूरा समाज माफ कर देगा। मेरी स्थिति क्या है, जानते हो। मेरे माँ-बाप मुझे देखते ही मुँह फेर लेंगे। इकलौती बेटी नाक कटा कर मुँह काला करके आ रही है। यहाँ आने से बेहतर था, कही नदी मे डूब मरती। मुझे न समाज अपनायेगा, न व्यक्ति। ससार की कोई भी शक्ति मेरा कौमार्य नही लौटा सकती है, न समर्पित यौवन। तुम्हारे और मेरे बीच मे यही अन्तर है। स्त्री और पुरुष के बीच यही अन्तर है।

अधेरा काफी हो चला था। मैंने पूजा को कसकर अपने सीने से चिपका लिया, 'पूजा प्लीज। ऐसा तो न कहो। म लौट कर आरती को नही पा सकता न तुम्हे मझधार में ही छोड़ सकता हूँ।''

हम क्वार्टर मे पहुँचे तो धरती पर रात उतर आई थी। उस रात हम लोग देर रात तक सो नही पाये। सुबह जब उठे तो फैक्ट्री का पहला सायरन बज चुका था।

बरसात विदा हो चुकी थी। दुर्गा-पूजा की छुट्टियाँ शुरू हो गई थी। फैक्ट्री मे चार दिन की छुट्टी थी। सभी लोग अपनी सुविधानुसार बाहर जा रहे थे, कोई कलकत्ता, कोई पटना, कोई दिल्ली तो कोई किसी पहाडी स्थान पर। पूजा की दुर्गा-पूजा देखने की बडी तीव्र इच्छा थी, किन्तु हम यह सोचकर कही नही गये कि बात अभी ताजा ही है। यात्रा मे कोई परिचित व्यक्ति हम दोनो मे से किसी का भी मिल जायेगा तो लेने के देने पड जाएँगे।

ऐसे ही एक छुट्टी की शाम करीब 5 बजे से पूर्व म और पूजा नदी के तट पर घूमते-घूमते बहुत दूर तक चले गये। नदी के सहारे-सहारे पगडण्डी जाती थी, उसी पर चलते-चलते बहुत आगे बढ गये। नदी के उस पार सामने एक खूबसूरत-सी छोटी सी बस्ती नजर आ रही थी। वहाँ तक जाने की इच्छा हुई, पर नदी पार करने के लिए नाव उपलब्ध नही थी। तैरना हम दोना को ही नही आता था। हम तट पर घूमते-घूमते चप्पले वही उतारकर पानी मे घुस गये। नदी का बहता शीतल पानी बहुत ही अच्छा लग रहा था। हम घुटनो तक पानी मे उतर गये। आगे पानी का प्रवाह तेज था, मैंने पूजा को हाथ पकड कर रोक लिया। वह गुर्राई, "रोक क्यो लिया?'

'तो क्या अन्दर डूबने दूँ?"
'आये है बचाने वाले?"
'डूब कर तो देखो।"

'क्यो, क्या आरती दीदी की याद आ गई जो इतनी जल्दी डुबोनेच ले।"
"हाँ आ गई।"
"तो धक्का मार दो ना।"
"यह पाप मुझ से नही होगा।"
"एक कुँवारी लडकी को भगाकर ले आये। बडा धर्म किया।"
"कुवारी थी तब थी, आज तो है नही।"
"वो देखो, यादवेन्द्र, पानी मे कितनी खूबसूरत मछली तैरती आ रही है।"
'कहाँ।"
"वो देखो उस टेकरे के पास। पत्थर के बडे टेकरे के पास।"
' और एक मछली हमारे पास जो खडी है। हम वहाँ क्यो देखें ?"

और हम बहुत देर तक बहते पानी मे, तैरती मछलियो को देखते रहे। मुझे पूजा ने उस शाम ठेठ बचपन मे लौटा दिया था। बच्चो का खेल खेलकर। पूजा बीच पानी मे खडी-खडी बोलती।

गोपी चन्दर, हरा समन्दर।
मै उससे पूछता
बोल मेरी मछली कितना पानी।

और पूजा मुझे अपनी बाहो मे भर कर बोलती इत्ता पानी और धम से हम दोनो पानी मे गिर जाते। फिर हाँफते हुए उठते। यही पहेली दुहराते, फिर गिरते, फिर उठते फिर गिरते, फिर उठते। हमे खयाल ही नही रहा कि हमारे कपडे

भीग चुके हैं। क्वार्टर यहाँ से 3 किलोमीटर दूर है। उस शाम भीगे कपडो मे ही हम क्वाटर तक पहुँचे थे।

इसी खेल को बचपन मे चन्दा ने गाँव के तालाब मे सिखलाया था। पूजा ने इसे बिहार की धरती पर, दामोदर नदी के बहते पानी मे दोहराया। बोल वही थे, पर समय का अन्तराल बहुत बढ गया था।

सब कुछ ठीक-ठाक ही चल रहा था। अगर वैसे ही चलता रहता तो कुछ भी मुसीबत नही थी। पेट भरने लायक नौकरी मिल गई थी इसलिए मैं अध्यापकी को भूल गया था। पूजा को पाकर मैं आरती को भी भूलता जा रहा था। सच ही कहूँगा, महाशय, आरती को ही क्यो, चन्दा को और काजल को भी भूलता जा रहा था। चन्दा स्मृति, काजल सपना, आरती आवश्यकता और पूजा मेरी अनिवार्यता थी। यहाँ आकर जीवन मे थोडा ठहराव आया था। मन की भटकन कुछ कम हुई थी। समुद्र का पानी जब शान्त दिखाई पडे तो समझ लेना चाहिए कि अन्दर भयकर तूफान विकसित हो रहा है। शनै शनै सब कुछ शान्त हो रहा था। वर्तमान को पाकर मै भूतकाल को भुलाने की चेष्टा मे लगा था। मैंने अपने माँ-बाप को, आरती को राज को भुलाने की काफी कोशिश की। कुछ हद तक उनको भूला भी, पर मै यह भूल गया था कि एक जोडा माँ-बाप अपनी इकलौती जवान बेटी को अभी तक बिलकुल भी नही भूल पाये है। किंचित् मात्र भी नही।

पूजा के माँ-बाप अगले सप्ताह जब दिल्ली से वापस लौटे तो अपनी इकलौती बेटी को घर पर नही पाकर हतप्रभ रह गये। सोचा कही सहेली के चली गई होगी या सिनेमा। कुछ घण्टे

प्रतीक्षा की। फिर सब परिचितों के यहाँ फोन किये गये। मेरे मकान पर भी खोज की गई। मकान बन्द मिला। पूजा कहीं नहीं मिली। आशंका बढ़ती ही गई। दूसरे दिन सुबह पुलिस में रिपोर्ट दर्ज करा दी गई। पुलिस ने बहुत सरगर्मी से जाँच की, मेरे माँ बाप के पास भी गये। मकान मालिक के पास जयपुर पहुँचे। उन्हें पूजा की तस्वीर दिखलाई तो सारा भेद ही खुल गया। उसके दूसरे दिन राजस्थान के सारे दैनिक अखबारों ने चटकारे लेकर यह समाचार प्रकाशित किया। "बीकानेर का अध्यापक यादवेन्द्र, अपनी शिष्या पूजा चक्रवर्ती को भगाकर फरार हो गया।" पुलिस को उनकी तलाश है खोज जारी है।

अगर यह खबर छपकर ही रह जाती तो कोई बात नहीं थी। पर पुलिस की नजर और कानून के हाथ बहुत लम्बे होते है। हमारे भागने की पहली सालगिरह के दिन जब हम सोकर उठे तो देखते है कि बड़ी संख्या में पुलिस हमारे क्वार्टर को घेरे खड़ी है। आत्मसमर्पण के अतिरिक्त कोई चारा भी नहीं था। पुलिस बड़ी परेशानी झेलती हुई हम दोनों को खोजते-खोजते कई प्रान्त पार कर के आई थी। उनके साथ सहायता के लिए बिहार की एक टुकड़ी भी साथ थी। जब हम इस क्वाटर में आये थे तो केवल दो ही थे मैं और पूजा। किन्तु जब आज पुलिस के साथ वापस चले तो हमारी दो माह की बेटी जया भी पूजा की गोद में थी।

मुझे पुलिस ने अपहरण के मामले में गिरफ्तार किया था। मैं एक नाबालिग लड़की को भगाकर लाया था। यही मेरा अपराध था। पूजा को पुलिस ने मेरे क्वार्टर से मेरे कब्जे से गिरफ्तार किया था इसलिए उसको भी साथ ले जाना तथा उसके माँ बाप को सभलाना जरूरी था।

तीसरे दिन सुबह जब बीकानेर के रेलवे स्टेशन पर पहुँचा तो प्लेटफार्म भीड से खचाखच भरा था। तिल रखने की भी जगह नही थी। कैसा अभूतपूर्व स्वागत हो रहा था, हम तीनो का। मेरे हाथो मे हथकडियाँ लगी हुई थी। आगे आगे मैं चल रहा था। मेरे पीछे पीछे जया को गोद मे लिए पूजा चल रही थी। पुलिस ने हमे घेर रखा था ताकि उत्तेजित भीड हमारा कुछ अहित न कर सके। भीड तरह तरह की गन्दी गालियाँ मुझे व पूजा को निकाल रही थी। भीड मे मैंने नजरे घुमाकर देखा कही भी पूजा के मम्मी, पापा नजर नही आये। शायद शरम के मारे आये ही नही होंगे। बुद्धिमानी भी न आने मे ही थी। गेट के पास पहुँच कर मैं चौक उठा। भीड मे एक तरफ आरती, राज और उसके पति खडे थे। मैंने नजरे नीची झुका ली और आगे बढने लगा। पूजा की नजरें ज्यो ही आरती पर पडी वह अपने आप को रोक नही सकी। दीदी, मुझे माफ कर दो। मुझे माफ कर दो दीदी।

आरती मुँह से कुछ नही बोली। उसकी आँखो मे से आँसू झर रहे थे। वह तीर की तरह पुलिस के घेरे को चीरती हुई दौड कर पूजा के पास आई और एक ही झटके मे जया को आरती ने पूजा से छीन कर अपनी गोद मे लेकर छाती से चिपका लिया। भीड पर मानो घडो पानी पड गया हो। सब कुछ शान्त हो चला था।

यहाँ से शुरू होती है जया की कहानी महाशय। और जया की कहानी जब सुननी है तो विजय की कहानी आपको सुननी ही पडेगी। जया और विजय की कहानी सुने बिना इस पत्र की कहानी आपके बिलकुल भी समझ मे नही आयेगी। पत्र, जो

इस समय भी मेरे हाथ में पड़ा हुआ है लेकिन इसके पहले कि जया और विजय की कहानी सुन, इस पत्र की कहानी सुनें, मेरी और पूजा की शेष कहानी भी आपको सुननी पड़ेगी, सुननी ही पड़ेगी महाशय।

क्षितिज के उस पार सुबह का सूरज दिन भर की लम्बी यात्रा की तैयारियाँ कर रहा है। उसके सातो घोडे रथ को खीचने के लिए पहुँच चुके हैं। दूर बहुत दूर गाँव के उस घर मे मुर्गे ने दूसरी बाग फिर लगा दी है। सवेरा होने ही वाला है। सवेरा तो रोज ही होता है। सवेरा आज भी होगा ही। सवेरा उस दिन भी हुआ था, जिस दिन मेरा मकान मालिक मेरे से मिलने के लिए जयपुर से बीकानेर आया था। कई-कई सुबहे जीवन को बहुत कुछ याद रखने काबिल दे जाती हैं। अगर उस दिन सवेरा नही होता तो मेरे जीवन मे ऐसा अनर्थ कभी नही होता जिसका परिणाम मैंने आगे जाकर भोगा। पूजा ने भी भोगा, आरती ने भी भोगा। हम सभी ने भोगा।

कई घटनाएँ भी जीवन मे अप्रत्याशित रूप से ही घटती है, जिनके बिना घटित हुए भी किसी का कुछ बनता बिगडता नही। बाबा के हाथ टूटने की भी ऐसी ही घटना थी जो टल भी सकती थी। बाबा का हाथ यदि नही टूटता तो आरती को तत्काल गाँव नही लौटना पडता, आरती को गाँव नही लौटना पडता तो पूजा उस रात मेरी बाहों मे नही आती, अगर ऐसा नही होता तो बहुत ही ठीक था और तो और उस रात अगर तेज पानी नहीं गिरता, सडकें पानी से नही भरती तो पूजा को मेरे घर पर, मेरे कमरे मे एक ही बिस्तर पर रात नही बितानी पडती। अगर ऐसा नही होता तो उस दिन मेरे हाथो मे

हथकडियाँ नही होती, पूजा को हजारो आँखो के सामने इस तरह नीचे नही देखना पडता ।

इस समाज की कैसी विडम्बना है महाशय । यहाँ लोगो को किसी के व्यक्तिगत जीवन मे झाँकने मे बडा ही आनन्द आता है । पूजा उस रात मेरे घर पर सोई थी फिर हम लोग शहर छोडकर भाग गए थे । इससे नुकसान किसे हुआ । पूजा को उसके मम्मी, पापा को मुझे, आरती को, मेरी माँ बाबा को, राज को, उसके पति को । इन्ही को तो न ? बाकी जो भीड उस दिन स्टेशन पर खडी थी, उसमे से एक का भी किंचित मात्र भी अहित हुआ हो, मुझे खयाल नही पडता । फिर ये भीड क्यो हमारे पीछे पडी थी, क्यो पूजा को इतना घूर-घूर कर देख रही थी । क्यो उसे गालियाँ निकाल रही थी । भीड या समाज के लिए चरित्र-लाछन तो एक बहाना होता है ।

मानव मन को मैंने एकान्त साधना के वर्षो बाद कुछ-कुछ समझा है । यह तो एक बहाना होता है, भीड तो निश्चय ही एक बहाना है, बाकी तो हर आदमी अन्दर से कमजोर है । काम लोलुप है । अपराधी है । सबको अपनी-अपनी पहले पडी है । अपनी पूजा को कोई घर से बाहर नही निकलने देना चाहता । चाहे पूजा किसी की बेटी हो, चाहे बहिन । इसको छोड कर बाकी तो दुनिया का हर नौजवान यहाँ तक कि अधेड भी, मन से यादवेन्द्र है, हर किशोरी युवती मन से पूजा है । मन ही मन हर यादवेन्द्र, हर पूजा को एक ही बिस्तर पर सुलाने के लिए आतुर है, उसे भगाकर ले जाने के लिए उत्सुक है, किन्तु है सब डरपोक । सामने कोई नही आना चाहता । भीड से सब डरते है, कतराते हैं ।

मैंने अपने वकील से बहुत बार यह प्रश्न किया है, आपका कानून प्रकट अपराध करने वाले को तो सजा दे सकता है, मुजरिम करार दे सकता है, लेकिन दुनिया के लाखो, करोड़ो लोग जो अन्दर ही अन्दर मन ही मन अपराध किये जा रहे हैं उन्हे सजा क्यो नही द सकता। दोषी तो दोनो ही हैं। उसका उत्तर मुझे कभी नही मिला। मैंने न्यायालयो मे न्यायविदो को कहते सुना है, 'बुरा मत करो, बुरा मत सोचो, बुरा मत कहो।" मेरी बुद्धि के अनुसार तो अपराध करने से भी ज्यादा घृणित एव निन्दनीय काय अपराध के विषय मे सोचना है। उसे मन मे पालना है। कानून ने कानूनविदो की एक ही बात मानी। बाकी दो के लिए सजा निर्धारित नही की। जब इसी कहानी को मैंने बाबा बजनाथ को पहली बार, ऐसी ही एक रात मे, इसी आश्रम मे सुनायी थी तो मालूम है उन्होने क्या कहा था? उन्होने सहज भाव से कहा था, 'बेटे प्रकट अपराध का फल तो तुम्हें समाज और कानून दे सकता है। हम सन्यासी लोग अपनी तपस्या बुरा न सोचने से ही शुरू करते है।"

यदि आदमी के मन पर लगाम रहेगी तो तन पर स्वत ही अकुश रहेगा। यह सब साधना से ही होता है। जवान बहिन और जवान प्रेमिका के मिलने पर हाथ दोनो ही स्थितियो मे उठते है, एक आशीर्वाद देने के लिए उठता है, सिर पर रखा जाता है। दूसरा किसी को बाहो मे भरने के लिए। वहाँ हमारी लगाम ही काम मे आती है। ससारी और साधु मे इस मन की लगाम का ही अन्तर है। नही तो दोनो ही मनुष्य है। हाड-मास के लोण्डे भर। साधु हर स्थिति मे मन पर लगाम रख सकता है। यहा तक कि पत्नी को भोगने के बाद भी वह उससे निर्लिप्त

हो सकता है। ससारी यह लगाम सम्बन्धो के आधार पर अथवा समाज के भय से कभी-कभी ही लगा पाते है। भर्तृहरि एव पिंगला का उदाहरण तो तुमने सुना ही होगा। अगर समाज का भय नही होता तो हर ससारी यादवेन्द्र बनकर पूजा को भगाने के लिए हर चौराहे पर खडा मिलता।

व्यक्ति अपनी चाल से चलता है समाज अपना गति मे चलता है और समय अपनी गति से। समय हमेशा अपना काम निर्धारित समय पर ही करता है। न्यायालय मे मेरे मुकदमे का परीक्षण भी निर्धारित समय पर ही शुरू हुआ निर्धारित गति से ही चला। बीकानेर की सबसे बडी अदालत मे मेरे मुकदमे की सुनवाई शुरू हुई। मुझे हथकडी डाल कर ही न्यायिक अभिरक्षा मे न्यायालय मे ले जाया जाता। अदालत का कमरा भीड से खचाखच भरा होता। व्यवस्था के लिए सरकार ने बाहर पुलिस भी तैनात कर दी थी। अच्छा ही हुआ जो मेरी जमानत नही हुई, वरना भीड मुझे पत्थरो से मार-मार कर घायल कर देती। शायद मार ही डालती। मेरी जमानत मे सबसे बडा रोडा सरकारी वकील ने ही अटकाया था। मुजरिम भयकर अपराधी है। समाज की नजरो मे घृणित अपराधी भी। ऐसे अपराधी के रहते शहर की बहू-बेटी की आबरू सुरक्षित नही है। मुजरिम किसी की भी पूजा को फिर भगा कर ले जा सकता है यही सब तर्क दिये थ। मेरी जमानत की अर्जी नामजूर कर दी गई थी।

अदालत मे बयान तो बहुत से गवाहो के अकित किये गये। अभियोजन साक्ष्य न 1, न 2, न 3, न 4 पर उनमे वर्णन करने लायक कुछ भी नही है। आपको बताने लायक कुछ भी

नही है। सभी सरकारी वकील के द्वारा बतलाई हुई कहानी को दुहराते रहे। उसी रटी रटाई भाषा मे। मैं मूर्तिवत् अदालत म खडा रहता। कब पाँच बजें, कब भीड की नजरो से ओझल होवें, इसी बात की उत्सुकता रहती। बाहर भीड की नजर झेलने का साहस मुझ मे नही रह गया था।

एक दिन अदालत खुलते ही जो गवाह-गवाहो के कठघरे म आकर खडा हुआ उसने मुझे सिर से पाँव तक सिहरा दिया था। आज की गवाह थी पूजा की मम्मी। मिसेज शालिनी चक्रवर्ती। उस दिन न्यायालय के कक्ष मे भीड रोजाना मे कुछ ज्यादा ही थी। एक बार मैंने मिसेज चक्रवर्ती से नजरें मिलाई। उनकी अगारे बरसाती आँखो को मैं सहन नही कर सका था। वातावरण के अनुसार आदमी की दृष्टि मे भी कितना अन्तर पड जाता है। मैं अदालत के कटघरे मे खडा था। मेरा मन कही अतीत मे घूम रहा था। सबसे पहले मैंने मिसेज चक्रवर्ती को हाथी पोल के बाहर निकल कर आते हुए देखा था।

बीकानेर के किले का हाथी पोल। शाम के 6 बज चुके थे। पर्यटक किला देखकर वापस लौट रहे थे। छ बजे बाद किले मे प्रवेश बन्द हो जाता है। द्वारपाल ने हमे टोक दिया था। पर मेरे साथी अध्यापक भरतसिंह के कहने पर हमें हाथी पोल तक जाकर देख आने की अनुमति दे दी थी। उस समय मिस्टर चक्रवर्ती, मिसेज चक्रवर्ती हाथी पोल से बाहर निकल रहे थे। कितना खूबसूरत चेहरा था मिसेज चक्रवर्ती का। बडी-बडी आँखे। लम्बा कद, मस्त हथिनी-सी चाल। पीछे पीछे मिस्टर चक्रवर्ती चल रहे थे। मैं एकटक देखता रह गया। इतने मे ही वातावरण मे एक गुजन सी हुई, "मम्मी, मम्मी रुकिये न,

हम पीछे रह गये हैं । मैं चौकन्ना होकर देखने लगा । बेवी चक्रवर्ती दौड़ी-दौड़ी अपनी मम्मी के पास आकर रुक गई । वह हाँफ रही थी । अपनी माँ के समान ही गोरा रंग, वैसा ही खूबसूरत चेहरा, पर ताजगी भरा हुआ । अछूते यौवन का उल्लास अंग अंग से टपक रहा था । मेरे साथी अध्यापक ने ही मेरा परिचय कराया ' ये है मिस्टर एण्ड मिसेज चक्रवर्ती, ये इनकी लाडली बिटिया मिस पूजा चक्रवर्ती ।

वही खडे-खडे दस पाँच मिनट बातचीत भी हुई । बातो ही बातो मे मिसेज चक्रवर्ती ने बता दिया था कि उनकी बिटिया भी विज्ञान की छात्रा है । कभी घर आइये न । कह कर चक्रववर्ती परिवार किले से बाहर निकल गया था । कितना अन्तर था मिसेज चक्रवर्ती की हाथी पोल की उन नजरो मे और आज की नजरो मे । समय-समय की बात होती है महाशय, कभी-कभी छोटी सी घटना बहुत बडी बन जाती है । अगर उस दिन हमे द्वारपाल हाथी पोल तक जाने की इजाजत नही देता तो पूजा और उसके मम्मी-पापा से मेरा परिचय भी नही होता । यही क्यो ? एक घटना दूसरे से जुडी भी तो रहती है । यदि उस दिन मेरे साथी अध्यापक भरत सिंह मेरे साथ नही होते तो मेरा पूजा व उसके मम्मी पापा से परिचय होता ही क्यो ? मेरे साथी अध्यापक पूजा को अंग्रेजी पढाने जाते थे, इसीलिए यह सब हो गया । अगर उस दिन हमारा परिचय नही होता तो पता नही मैं और पूजा जीवन के किसी मोड पर, चौराहे पर, बस मे, ट्रेन मे, दफ्तर मे, कभी मिलते भी या नही । क्यो होती इतनी बडी यह दुर्घटना । यह सब परिचय के ही कारण तो हुआ ।

"मिसेज चक्रवर्ती, आपने पहले-पहल यादवेन्द्र को कहाँ देखा था ?" मैं अपनी चेतना मे लौटा तो सरकारी वकील का प्रश्न मेरे कानो मे सुनाई पडा।

"यही इसी शहर मे। किले के हाथीपोल मे बाहर निकलते हुए। पूजा व इसके पापा भी साथ थे।"

'यह आपके घर कितनी बार गया।"

'ज्यादा बार नही, कोई दो तीन बार ही।"

"अकेले ही।"

'नही, श्रीमती आरती यादवेन्द्र के साथ।"

'वे कैसी महिला है ?"

'मिलनसार, गम्भीर, मितभाषी।"

"आप पूजा को अकेली को ही पढने मुजरिम के घर भेजती थी।"

"श्रीमती आरती के घर पर रहने के कारण।"

और न जाने कितने प्रश्न किये गये। कितने उत्तर आये। सकेत यही था कि मैं उन लोगो की अनुपस्थिति मे, पूजा को फुसला कर, भगा ले गया। इसलिए अपराधी हूँ।

अब दूसरे गवाह की बारी थी। इस मुकदमे का सबसे अहम् एव खूबसूरत गवाह। मैं सच ही तो कह रहा हूँ महाशय। सबसे खूबसूरत गवाह। अदालत के कमरे मे खडी इतनी भीड, अदालत कक्ष के बाहर मडराती भीड। बहुत से नौसिखिये वकीलो की भीड। सभी की रुचि उस लडकी को देखने मे थी, जिसे मे सरकारी आरोप के अनुसार भगा कर ले गया था। खडी भीड यही तो सोच रही थी। यही उत्सुकता सबको थी कि कैसी होगी वह लडकी, जिसे एक अध्यापक फुसला कर ले गया। कोई तो

सत्रो उसमे होगी ही। जब पूजा ने न्यायालय कक्ष मे धीरे धीरे चल कर प्रवेश किया तो पूरे न्यायालय मे सन्नाटा छा गया। एकदम मृत्यु का सा सन्नाटा। जज साहब भी आती हुई पूजा को तरफ देख रहे थे। सरकारी वकील ने उसे गवाह के कठघरे मे खडे होने का इशारा किया, पूजा ने उसका पालन किया।

सैकडो लोगो के दिल धडक रहे थे। अब यह लडकी क्या बयान देगी ? कैसे बोलेगी मुजरिम पक्ष का वकील उससे क्या-क्या सवाल पूछेगा ? इन्ही सब बातो से लोगबाग उत्सुकतावश एक दूसरे को ताक रहे थे। पूजा सिर नीचा किये गवाह के कठघरे मे खडी हो गई। उसकी और मेरी नजरें एक बार मिली, फिर उसने अपनी दृष्टि झुका ली। झुकाली क्या मानो निगाह को जमीन मे गाड दिया। मेरे पास खडे दो युवा वकील छोकरे आपस मे बतिया रहे थे "लडकी भीड को देखकर नर्वस हो गई दिखती है। शायद क्रास-एक्जामिनेशन फेस नही कर सकेगी।" सरकारी वकील पूजा के नजदीक जाकर बोला था, "घबराओ नही। सच सच बात बताती जाओ और शपथ ग्रहण करो कि जो कुछ कहोगी, धम से सच-सच कहोगी, सच के अलावा कुछ नही कहोगी। पूजा ने सिर नीचे किये शपथ ली।"

जज साहब ने बयान लिखने शुरू कर दिये थे। पूजा ने उस समय जो बयान दिये थे, मुझे आज भी ज्यो के त्यो याद है। बहुत सी बातो को डायरी मे नही लिखना पडता। वे दिमाग पर लिखी जाती है। जज साहब ने पूजा से पूछना शुरू किया।

"तुम्हारा नाम।"

'पूजा।'

उसके बाद वे सारे औपचारिक प्रश्न पूछे गये थे, यथा पिता का नाम आयु, निवास, व्यवसाय इत्यादि इत्यादि। अब प्रश्न पूछने की सरकारी वकील की बारी थी और उत्तर देने की पूजा की जिम्मेदारी।

'मिस पूजा चक्रवर्ती, तुम इस मुजरिम को जानती हो जो कठघरे मे खडा है।"

"मेरा नाम शुद्ध कीजिये। मैं मिस पूजा चक्रवर्ती नही, श्रीमती पूजा यादवेन्द्र हूँ।"

लोगो को ऐसे लगा जैसे वे कोई तेज रफ्तार वाली लिफ्ट से अचानक नीचे उतर रहे हो और लिफ्ट बेकाबू हो गई हो। सभी के दिल धडकने लगे। डूबने से लगे। पूजा ने सीधी होकर एकदम तन कर उत्तर देना शुरू कर दिया।

"चलिए बताओ आप मुजरिम को कब से जानती हैं।"

"यादवेन्द्र को मैंने सबसे पहले किले के हाथी पोल पर आज के दो वर्ष पूर्व देखा था तभी से जानती हूँ।"

"आप इसके घरपर जातीथी।"

"जी, हा।"

'क्यो?"

"ट्यूशन पढने। ये अध्यापक थे।"

"इनके घर मे कौन-कौन थे?"

"इनकी पत्नी आरती दीदी और बूढी माँ।"

"घटना वाले दिन कौन-कौन थे?"

"आरती दीदी व मा गाव चली गई थी, उस दिन घर पर मैं, यादवेन्द्र व इनके मकान मालिक ही थे।"

"आप व यादवेन्द्र उस रात एक ही कमरे मे सोये थे।'

"सोये नही तो जागे अवश्य थे।"

"क्या उस रात यादवेन्द्र ने आपसे सम्भोग किया ?"

"यह हमारा निजी मामला है प्लीज वकील साहब।"

"आपको जवाब देना ही पडेगा।"

"मैं जवाब दे चुकी।"

"आपको ठीक ठीक उत्तर देना ही पडेगी।"

"आप ठीक-ठीक प्रश्न तो पूछिये, उत्तर अवश्य मिलेगा।"

"मैं फिर पूछता हूँ, उस रात क्या यादवेन्द्र ने आपके साथ सम्भोग किया।"

"जी, हाँ।"

"कितनी बार।"

'जितनी बार जी मे आया।"

"किसके ?"

"हम दोनो के।"

"आपको यादवेन्द्र भगाकर कहाँ ले गया ?"

"गलत कह रहे है आप ?"

"क्या मतलब ?"

'मुझे यादवेन्द्र भगाकर नही ले गया, वल्कि मैं यादवेन्द्र को भगाकर ले गई थी।"

इतना कहकर पूजा घायल शेरनी की तरहतन कर खडी हो गई। उत्तर सुनकर जज साहब भी थोडी देर के लिए सहम गये।

'तुम लोग कहा गये थे।"

"बिहार मे, गोमिया के पास एक फैक्ट्री मे।"

"तुमने आरती का अभिनय क्यो किया ?'

"मुझे अभिनय करना आता था, इसलिए।"

"तुम अपनी स्वेच्छा से गयी, या जबरदस्ती ।"

"मैं कमजोर लडकी नही हूँ । उस वक्त भी नही थी ।"

"आप सीधे उत्तर दीजिये ।"

"प्रश्न पूछना आपका काम है, उत्तर देना मेरा ।"

"यह न्यायालय है समझी ।" सरकारी वकील ने गुस्से मे आकर कहा।

"मुझे मालूम है । मैं न्यायालय की इज्जत करती हूँ ।"

'आपको यह भी पता है, आप एक गवाह हैं और बयान देने यहाँ आई हैं ।"

"मैं अपनी स्थिति पहचान रही हूँ ।"

सरकारी वकील बौखला उठा । उसने साहब से अनुरोध किया कि गवाह पुलिस केस को बिगाड रहा है । अभियोजन पक्ष का समथन नही कर रहा है इसलिए उसे पक्षद्रोही घोषित किया जावे । उनका अनुरोध स्वीकार कर लिया गया । फिर सरकारी वकील ने पूजा से जिरह करनी शुरू की ।

"आप फैक्ट्री मे कब तक रहे ।"

"जब तक पुलिस हमे पकड कर यहाँ नही ले आई ।"

"क्या मतलब ?"

"तारीखें मुझे याद नही है ।"

"यादवेन्द्र ने आपसे वहाँ पर भी सम्भोग किया ।"

"पहले भी कह चुकी हूँ यह हमारा निजी मामला है ।"

"प्रमाण चाहते हैं तो देख लीजिये, आरती दीदी की गोद मे जो बच्ची है, वह हमारी ही है ।"

सरकारी वकील ने आगे सवाल नही पूछे। मेरे वकील ने पूजा से कोई जिरह की ही नहीं । आवश्यकता भी नही थी ।

निर्णय के दिन अदालत का कमरा खचाखच भरा था। वही तिल रखने की जगह नही थी। ठीक समय जज साहब कुर्सी पर आये। मुझे कठघरे मे बुलाया गया। मेरे वकील को और सरकारी वकील को बुलाया गया। जज साहब ने घटना के दिन पूजा को अवयस्क मान कर, अवयस्क लडकी को उसके माँ बाप के सरक्षण से फुसला कर भगाने एव उसके साथ सम्भोग करने के अपराध मे मुझे 10 वर्ष की सख्त सजा सुना दी। मेरे वकील ने बाद मे बतलाया कि अवयस्क की सहमति ऐसे मामलो मे सहमति नही मानी जाती। वहाँ से तीन रोज बाद सजा भुगतने के लिए मुझे केन्द्रीय कारागार, जयपुर मे भेज दिया गया। एक अध्याय समाप्त हुआ।

केन्द्रीय कारागार, जयपुर मे मैंने अपने जीवन के दस स्वर्णिम वर्ष गुजारे हैं। एक-एक दिन गिन कर समय काटा। इस अवधि में न मालूम कितनो तरह के लोगो से सम्पर्क हुआ। उनके जीवन को देखा, उनकी परिस्थितियो का अध्ययन किया। जहाँ नजर घुमाओ वही अपराधी ही अपराधी। सजा भोगते हुए अपराधी। अपने किये हुए पापो का दण्ड भोगते हुए अपराधी। उनमे कानून की नजर से तो कोई भी निरपराधी नही था। मैं धीरे-धीरे सबसे कटता गया। न मेरी किसी अपराधी मे रुचि थी। न किसी अपराध मे। अपने किये हुए की सजा मैं भुगत रहा था। इसके बाद आरती ने मेरे वकील से मिल कर अपील करवाई किन्तु वहाँ भी परिणाम मेरे पक्ष मे नही रहा। मुझे पूरी सजा भुगतनी पडी।

बीच बीच मे आरती मुझ से मिलने छुट्टी के दिन जेल मे आती रहती थी। उसके साथ दो-चार बार राज भी आई।

उसका पति भी आया। मैंने सबसे नाता तोड लिया था। उन दस वर्षों के काल मे मैंने स्वय को आध्यात्म के अध्ययन मे प्ररित किया। उस समय मे मैंने वेद, पुराण, उपनिषद्, भागवत् व अन्य धर्म ग्रन्थो का डट कर अध्ययन किया। एक तरह मे दुनिया से मेरा मोह भग हो रहा था। मैंने अपनी सारी शक्ति आध्यात्म मे की ओर लगा दी। सारे जेल अधिकारी मेरे व्यवहार से अत्यन्त खुश थे। मुझे निर्धारित समय से भी कुछ पहले ही रियायत देकर जेल से छोड दिया गया था।

मैंने अपनी जेल से छूटने की तिथि आरती को तथा राज या उसके पति को जानबूझ कर ही नही बताई थी। मैंने सोचा, यदि इनको पता लग गया तो ये लोग वहाँ पहुँच जायेंगे तथा घर लिवा ले जायेंगे। घर मुझे लौट कर जाना नहीं था। यह मैने जेल जीवन मे ही निश्चय कर लिया था कि मैं जेल से बाहर निकलकर यायावर की जिन्दगी बसर करूँगा। धरती बहुत बडी है, प्रकृति बहुत उदार है। कही न कही तो आश्रय-स्थल मिलता ही रहेगा। यह निर्णय मैंने जेल से छूटने के पहले ही कर लिया था।

और इसके आगे की कहानी आपको बता ही चुका हूँ महाशय। उस दिन भी सयोग से बरसात का ही मौसम था। रविवार का दिन था। दूसरे दिन सोमवती अमावस्या पड रही थी। मैं जयपुर से सीधा बस पकड कर सीकर तक पहुँच गया था, वहा से बस बदल कर रघुनाथगढ, फिर लौहार्गल की बिरता धर्मशाला मे। उसके बाद मेरी बाबा बैजनाथ से मुलाकात की की कहानी, मेरे इस आश्रम मे आने की कहानी आप सुन ही चुके है, महाशय। उसे दुबारा सुनाने की आवश्यकता भी नही है। समय भी नही है। अब भोर होने ही वाला है। भोर होने

के पहले पहले आपको जया की कहानी और सुननी है। विजय की कहानी सुननी है। इस पत्र की कहानी सुननी है, जो इस समय भी मेरे हाथ मे पडा हुआ है।

सृष्टि का जब से निर्माण हुआ है, इसका निरन्तर विकास हो रहा है। जो कल बच्चे थे, वे आज युवा हो गए है। जो आज युवा है वे कल वृद्ध हो जायेंगे। विकास का यह क्रम अनन्त काल तक ऐसे ही चलता रहेगा। प्रलय होने तक। महाप्रलय होने तक, किन्तु जिनके जीवन की उमग आरम्भ होने से पहले ही टूट गई, उनके लिए तो हर सास मौत से भी भारी होती है। उमगहीन जीवन ही मौत है चाहे वह कितनी ही लम्बी क्यो न हो? आरती ने मेरे साथ रहकर जीवन मे सिवाय मुसीबतो के क्या पाया? पूजा ने मेरे साथ भागकर सिवाय बदनामी के क्या हासिल किया। अब न आरती के लिए जीवन का कुछ अथ रह गया था, न पूजा के लिए, किन्तु हर जीवन किसी न किसी आशा पर तो टिका ही रहता है।

पूजा के सामने एक वैकल्पिक भविष्य था। उसके मम्मी-पापा उसका भविष्य नये सिरे से बनाने के लिए कटिबद्ध हो गये थे, किन्तु आरती के लिए तो ऐसी भी कोई सम्भावना नहीं थी। उसका भविष्य तो अर्द्ध-विराम पर आकर खडा हो गया था, जिसके आगे पूर्ण-विराम ही होता है। अधेरी रात मे यदि एक तारा भी आसमान मे टिमटिमाने लगे तो समझना चाहिए प्रकाश पुज पूणतया तो विलुप्त नही हुआ है। जया आसमान मे टिमटिमाता एक कमजोर तारा था, आरती के लिए। अब जया ही आरती का वतमान था। वही उसका भविष्य। वही उसकी आशा, वही निराशा, वही समस्या और वही समाधान।

आरती की कोख कुँवारी ही रही, किन्तु उसकी गोद जया के आने के बाद सूनी नही रही। जया की एक किलकारी, आरती के सूखे हुए जीवन के पौधे मे एक सचार भर देती थी।

पूजा का क्या हुआ, वह कहाँ गई, इस बारे मे मुझे वर्षों तक पता ही नही चला। मैंने बहुत प्रयत्न किये, उसका अता-पता लगाने के लिए। सब व्यर्थ ही गए, लेकिन एक दिन उसके विषय मे भी मुझे जानकारी मिल ही गई। पूजा के बारे मे मैं आपको ठहर कर बताऊँगा, पहले आपको जया की ही कहानी सुननी है। साथ मे विजय की कहानी सुननी है। उनसे जुडी हुई आरती की शेष कहानी सुननी है और शेष मे इस पत्र की कहानी भी सुननी है जो इस समय भी हाथ मे पडा हुआ है।

वैसे कहानी का क्या है। कहानी कही से भी शुरू को जा सकती है, कही भी समाप्त की जा सकती है। सभी कहानियाँ न तो एक मोड से शुरू होती है और न ही एक मोड पर समाप्त। मैं इस कहानी को यहीं भी समाप्त कर सकता था, अब तक आपने आश्रम मे बैठे एक सन्यासी का विगत तो जान ही लिया, जिसे हजारो आदमी रोजाना पूजते है। लाखो लोगो की जिस पर श्रद्धा है जिसने वर्षों वर्षों साधना की है, स्वय को इस आश्रम मे बैठने काबिल बनाया है, लेकिन मैं शुरू मे ही आपको बता चुका हूँ, मुझे कहानी मेरी नही इस पत्र की सुनानी है जो इस समय भी मेरे हाथ मे पडा हुआ है।

समय के पख लगे होते है, उसे उडते समय नही लगता। मनुष्य बालक से किशोर और किशोर से युवा होता है। जया भी सृष्टि के इस विकास-क्रम का अपवाद नही थी। कल जया

की शादी है। विजय के साथ जया की शादी है। उसी जया की, जिसका जन्म आज के बीस वर्ष पूर्व गोमिया के निकट स्थिति फैक्ट्री के एक क्वार्टर मे, दामोदर नदी के तट पर बने एक क्वार्टर मे हुआ। वही जया, जिसे एक दिन आरती ने बीकानेर के रेलवे स्टेशन पर लपक कर पूजा की गोद से लेकर अपनी छाती से चिपका लिया था। वही जया कल दुल्हिन के वेष मे सजेगी। विजय दूल्हा बनकर बारात लेकर आएगा। सप्तपदी होगी। जया विजय के साथ विदा होकर चली जायेगी, लेकिन सब एक ही दिन मे तो नही हुआ।

इस विकास-क्रम मे बीस वर्ष लगे है, महाशय। पूरे बीस वर्ष। इन बीस वर्षों मे आरती ने जया का यह रूप देखने के लिए क्या-क्या बलिदान किया है। क्या-क्या उत्सर्ग किया है, कितने-कितने कष्ट सहे है, कितने-कितने ताने सुने है ? कितनी सूनी शामे उसने जया के कल्याण के लिए तुलसी के बिरवे के पास घी के दीपक जलाये है। कितने उपवास किये है, कितनी रातो मे जाग कर जया को दुलहन बनते देखा है। उन सपनो को साकार करने मे आरती ने अपने जीवन के पूरे बीस वर्ष होम दिये है। इस युग मे कोई किसी के लिए एक दिन भी नही देना चाहता, वहाँ आरती ने जया को पूरे बीस वर्ष दिये है। महाशय, आरती का जीवन भोग के लिए नही, त्याग के लिए ही बना है, यदि इस बात को मैं आज के इक्कीस वर्ष पहले समझ लेता तो मेरे जीवन मे यह दुर्घटना कभी नही घटती, कभी नही घटती महाशय।

आरती बीकानेर से दो माह की जया को छाती से चिपकाये, घर लौटी तो पूरे गाँव मे हगामा मच गया। माँ-

बाबा ने भी हगामा मचा दिया। एक ही बेटा था, नाक कटा दी। गाँव मे समाज मे, सबके सामने। पर आरती थी जो शान्त रही। समुद्र के ठहरे हुए पानी की तरह शान्त। किसी तरह से आरती ने माँ-बाबा को राजी कर लिया था, मेरी न सही, उनकी तो पोती है। समय सब कुछ समझा देता है, समय सब घावो को भर देता है। धीरे-धीरे जया को पहले घरवालो ने फिर गाँव वालो ने अपना बना लिया था। आखिर उस अबोध का क्या दोष था। जो करेंगे, सो भरेंगे। जया को एक दिन गाँव की पाठशाला मे पढने के लिए आरती जाकर छोड आई थी। कुशाग्र बुद्धि जया पढाई मे हमेशा ही प्रथम आती थी। पूरी स्कूल मे उसका दबदबा हो गया था। सभी उसे चाहने लगे थे।

एक दिन जया ने गाव के स्कूल की पढाई पूरी कर ली। जया एक अध्यापक की बेटी थी, इसलिए अध्यापको की सहानुभूति उसके साथ होना नितान्त स्वाभाविक था। सभी अध्यापको ने मिलकर आरती को इस बात के लिए तैयार कर लिया था कि वह जया को आगे पढने के लिए किसी जगह भेज दें। समस्या धन की थी। पैसो का कोई विकल्प नही हो सकता। इसलिए आरती ने जया की पढाई जारी रखने के लिए अपने घर पर बचा खुचा सामान भी बेचना शुरू कर दिया था। जया पढती गई। हर वर्ष एक कक्षा आगे चढती गई। आरती के गाँव का खेत छोटा होता गया टुकडो मे बटता गया। जिस दिन जया ने पिलानी के सस्थान से बी ए पास किया उस दिन आरती अपने खेत का आखिरी टुकडा गाव के सरपच को बेचकर शहर जाकर उसकी रजिस्ट्री करा कर घर लौटी थी।

विजय से मेरा परिचय काफी पुराना है, महाशय। विजय की कहानी सुनना भी आपके लिए उतना ही जरूरी है, जितना जया की कहानी सुनना। बिना विजय की कहानी के जया की कहानी अधूरी हो रहेगी और अगर वह कहानी अधूरी ही रहेगी तो इस पत्र की कहानी भी अधूरी ही रहेगी जो इस समय भी मेरे हाथ मे पडा हुआ है।

विजय इस आश्रम मे बचपन से ही आता रहा है। बाबा बैजनाथ थे, तभी से आ रहा है। मैंने बाबा बैजनाथ के जीवन-काल मे ही विजय को इस आश्रम मे पहले पहल देखा था। अब विजय सुन्दर और स्वस्थ युवक है। जिस दिन मैंने विजय को सर्वप्रथम इस आश्रम मे देखा था, उस समय वह अपने माता-पिता के साथ यहाँ आया था। समय बढता गया। विजय भी बडा हो गया। जब वह सयाना, समझदार हो गया तो उसने अकेले ही इस आश्रम मे आना शुरु कर दिया था। बहुत ही सुशील लडका है विजय। न आज के जमाने की फैशन, न अनुशासनहीनता। विजय को बाबा बैजनाथ पर अगाध श्रद्धा थी। बाबा को भी इस लडके से स्नेह हो गया था।

साल मे दो चार बार यहाँ विजय जरूर आता है। आता है तो एक दो दिन ठहर कर ही जाता है। एकदम अल्पभाषी, विनम्र और अनुशासित। मुझ से भी विजय ने खूब बनाकर ही रखी है। मेरी बहुत इज्जत करता है वह। शायद ही मेरी किसी बात को टाला हो उसने आज तक। यहाँ आश्रम मे जितने लोग आते है अधिकाश या तो धन के भूखे होते है या मोक्ष के। दोनो ही स्थितियो से साधु बहुत दूर रहते हैं। धन चाहिए तो कर्मक्षेत्र मे उतरो, कुछ भी करो, कमाओ और धन इकट्ठा

करो। कर्मक्षेत्र मे मजदूरी से लेकर मैनेजरी तक और जुआ सौदा से लेकर डकैती तक सभी कुछ शामिल है।

कोई भी सन्यासी आपको धन नही दे सकता। रहा सवाल मोक्ष का। सन्यासी स्वय मोक्ष की प्राप्ति के लिए पूरे जीवन को भक्ति के गिरवी रख देता है, वह आप को मोक्ष कहाँ से दे पायेगा। इन दोनो ही वस्तुओ की याचना तो सीधे ईश्वर से ही करनी चाहिए, मैं तो हर आने वाले को यही सलाह देता हूँ। विजय इन सबसे अलग था जो इस आश्रम मे आते थे। उसने समझदार होकर बड़े होकर एक ही बात बार-बार पूछी है "बाबा गृहस्थ मे रह कर हम सुखी कैसे रह सकते है। इसके लिए क्या करना चाहिए।" मैं उससे बार-बार कहता, 'बेटे सद्-गृहस्थ बनना, सन्यासी बनने से कही ज्यादा दुष्कर कार्य है।" तो विजय एक ही बात कहता, 'तो बाबा मुझे न तो मोक्ष चाहिए न धन। मुझे तो सद्गृहस्थ बनने का ही आशीर्वाद दीजिये। केवल एक ही आशीर्वाद।"

महाशय सन्यासी को भी विभिन्न प्रकृति के लोगो की जिज्ञासा को अपने उत्तर से, व्यवहार से, कर्मों से शान्त करना पड़ता है, इसलिए ससारी न होते हुए भी हमे बहुत बार ससारी के से काय करने पड़ते है। ससारी के कार्यों मे कुछ देर के लिए उलझना भी पड़ता है। अगर उसमे किसी का हित होता हो तो उससे सन्यासीपन मे कमी नही आती।

आरती मेरे सेन्ट्रल जेल जयपुर से छूटने के करीब डेढ दो माह बाद राज और उसके पति को साथ लेकर जयपुर गई थी। निर्धारित समय के अनुसार उसी सप्ताह मेरा जेल से छूटना सम्भव था, किन्तु आरती व राज को जेल अधिकारियो ने मेरी पूव रिहाई के

बारे मे बता दिया था और वे लोग जयपुर मे निराश ही लौट आये थे। इतनी बडी दुनिया मे एक बार किसी का साथ बिछुड गया तो दुबारा मिलना बहुत ही मुश्किल है। कई-कई बार तो असम्भव सा ही है।

आरती और राज ने मेरी बहुत खोज की। राज इस दौड मे जल्दी ही थक गई थी। आरती ने मेरी खोज जारी रखी। वर्षो तक जारी रखी लेकिन यह दुनिया जैसा कि वैज्ञानिक एव भूगोल विशारद् कहते हैं, गोल है। इस गोल दुनिया मे हमे बिछुडने के बाद कई बार आत्मीयजन बडे नाटकीय ढग से मिल जाते है। ऐसे ही एक दिन आरती ने भी मुझे ढूँढ निकाला था और भी एक दो लोगो ने उसी तरह ढूँढ निकाला था, लेकिन यह कहानी जानने के लिए आपको विजय की पूरी कहानी जाननी पडेगी, उसी विजय की जो मेरे इस आश्रम मे साल मे दो चार बार आता रहता है।

इस बार जब विजय आश्रम मे आया तो वह हमेशा की तरह अकेला नही था। उसके साथ उसी के कालेज की उसकी एक सहपाठी छात्रा भी स थ थी। वे लोग दिन मे आश्रम मे आये शाम होने से पहले ही चले गये। हमारे यहाँ की यह परम्परा भी है महाशय, कोई लडकी या स्त्री इस आश्रम मे रात्रि विश्राम नही कर सकती। लडकी जो विजय के साथ थी, उसकी आयु यही कोई 18- 9 वर्ष रही होगी। लडकी ने विजय के पीछे-पीछे आकर मेरे चरण-स्पश किये। मैंने उन्हे बैठने का इशारा कर दिया। लडकी को देखते ही आज के 20 वर्ष पूर्व की पूजा की तस्वीर मेरी आँखो के आगे नाच उठी। वही कद, वही चेहरा वही रग, वही लम्बे लम्बे बाल। अन्तर था तो केवल वेष-भूषा मे। पूजा को

इस रूप मे देखा था तव वह साडी पहिनने लगी थी। इस लडकी ने जीन्स पहिन रखी थी। 20 वप पूव की पूजा और इस लडकी मे मुझे तिल भर भी अन्तर नही दिखाई पडा। विजय ने ही लडकी का परिचय कराते हुए मौन तोडा, "वावा, यह मेरी सह-पाठी है मिस जया। आपके दशन करने के लिए वहुत उत्सुक थी, इसीलिए आज साथ ले आया।"

"कहाँ पढती हो बेटी ?"

'पिलानी सस्थान मे विजय से दो क्लास जूनियर।"

"तुम्हारे मा वाप कहा रहते है वेटी ?"

"माँ गाव मे रहती है और "

"पिताजी कहाँ रहते है ?"

"क्या करेंगे पूछकर वावा।"

'जैसी तुम्हारी मर्जी बेटी मैं आश्वस्त हो गया था जया के उत्तरो से।"

"कहते है सन्यासी से कुछ भी छुपाना नही चाहिए। सच ही वताऊँगी। सुनती हूँ मेरे पिताजी को एक लडकी को भगाकर ले जाने के अपराध मे सजा हो गई थी। सजा काट कर वे जेल से पता नही कहाँ चले गये। घर लौटे ही नही।"

'यह सब पूछना बुरा तो नही लगा बटी।"

"वावा, बुरा क्यो कर लगेगा ? मनोकामना तो यही लेकर आई थी कि साधु कृपा से जीवन मे पिता के एक वार दर्शन हो जायें। मुझे और कुछ नही चाहिए वावा, बस इतना सा आशो-र्वाद दे दीजिये।"

'बेटी ऐसे पापी व्यक्ति से मिल कर क्या करोगी ?"

"क्यो बाबा, ? उन्होने मेरा क्या बिगाडा है ? पिता कितना ही पापी क्यो न हो ? होता तो पिता ही है न बाबा।"

देखिये महाशय इसे कहते हैं दुनिया गोल है। एक बेटी अपने ही बाप से अपने पिता के दर्शन या आशीर्वाद माँग रही है। इसे आप क्या कहेगे ? सयोग या ईश्वरीय लीला। कुछ भी कह लीजिए। दोनो एक ही चीज है।

दूसरी बार जब विजय आया तो अकेला ही था। वह रात भर आश्रम मे रुका भी। उस दिन विजय ने कहा था, "बाबा मैं बडे असमजस मे हूँ। मैं जया मे शादी करना चाहता हूँ। बाका-यदा शादी। पर जया जिद्द कर रही है।"

"तो क्या उससे जबरदस्ती शादी करना चाहते हो ?"

"नही बाबा कतई नही।"

"तो फिर क्या बात है ?"

"जया कहती है हम कोर्ट मैरिज करेंगे। मैं चाहता हूँ हम बाकायदा सप्तपदी से पूर्ण वैदिक रीति-रिवाजो से शादी करें।"

"जया ऐसा क्यो चाहती है ? क्या उसके घर वाले तैयार नही हैं ?"

"उसकी माँ आरती देवी ऐसा ही चाहती है, इसलिए। लेकिन चोरो की तरह छुप कर शादी क्यो करें बाबा ?"

"आरती देवी ऐसा क्यो चाहती ह ? कोई कारण तो होगा ही।"

"वे कहती हैं जया के पिता का कुछ भी अता-पता नही है। वे जेल से सजा काट कर कही चले गये है। घर पर शादी होने से तरह-तरह की बातें होगी।"

मैंने आपसे शुरू मे ही कहा था न महाशय कि मेरी इस कहानी को सुनने वाले आप पहले ही व्यक्ति नही

हैं। इससे पूर्व भी इसी कहानी को बाबा वैजनाथ इसी आश्रम मे मुझ से सुन चुके थे। दूसरे व्यक्ति ने भी यह कहानी मुझ मे इसी आश्रम मे सुनी थी। तीसरे व्यक्ति आप हैं जो यह कहानी सुन रहे है। मैंने आपसे कहा था न कि दूसरे व्यक्ति का मैं आपको नाम बाद मे बताऊँगा। अब तो आप समझ ही गये होगे, वह दूसरा व्यक्ति कौन था। यही विजय। जया का होने वाला पति विजय।

उस रात इस आश्रम मे इसी स्थान पर मैंने यह पूरी कहानी विजय को सुनाई थी। विजय मेरा बहुत ही विश्वास-पात्र है। इसीलिए यह कहानी उसे सुनाई थी। दूसरे उसको कहानी सुनाने का एक अभिप्राय था, निश्चित ही एक अभिप्राय था। मैंने विजय से कह दिया था, तुम आरती देवी से मिलकर उन्हें सारी घटना बता देना, और कह देना जया की खुशी के लिए तुम्हारी खुशी के लिए शादी घर पर ही करे। हा जया को इसकी खबर नही होनी चाहिए। बिल्कुल भी नही।

सुबह के पाँच बजने मे पाँच ही मिनट बाकी है, महाशय। भोर होने ही वाली है। ठीक पाँच बजे आश्रम हे रखी अलार्म घडी बज उठेगी और उसी के साथ सारा आश्रम जाग उठेगा। मैंने सब कुछ ही तो आपको बता दिया है महाशय, पूरी कहानी ही आपको सुनानी थी, सुना दी। जया की पूरी कहानी सुना दी विजय की पूरी कहानी सुना दी। अभयनाथ की कहानी भी सुना दी। इतने धैर्य से आपने रातभर जागकर यह कहानी सुनी, इसके लिए मैं आपको मेरी ओर से बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूँ। अनेक धन्यवाद देता हूँ। आज के युग मे इस आपाधापी के युग मे किसी के पास भी समय नही है। कहानी सुनने के लिए तो समय बिलकुल भी नही है। फिर आपने आग्रहपूर्वक मेरी

सारी कहानी सुनी, इसके लिए आपको धन्यवाद तो देना ही देना है।

जब आपने रातभर मेरे साथ जागकर यह पूरी कहानी सुनी ही है तो अब पाँच मिनट मे कुछ भी बनने, बिगडने वाला नही है। मैंने कहानी सुनाते सुनाते आपसे वादा भी किया था कि मैं आपको पूजा के बारे मे बताऊँगा कि वह कहाँ है और इस शेष पाँच मिनट के समय मे मैं आपको पूजा की शेष कहानी ही सुनाऊँगा। पूजा की कहानी और इस पत्र की कहानी जो इस समय भी मेरे हाथ मे है। कोई अलग अलग कहानियाँ नहीं है महाशय। एक ही कहानी है दोनो की। इतनी देर तक मैंने आपको सारी कहानी मौखिक ही सुनाई। अब कहानी के अन्त मे मै इस पत्र को ही खोल कर पढ देता हूँ। यह पत्र पूजा ने आरती को कोई दिन लिखा था और आरती ने विजय के हाथो इस पत्र को मुझ तक पहुँचाया है। पत्र कई तिथियो मे लिखा हुआ है। वही मै आपको पढकर सुना रहा हूँ, जिससे आप पूजा की शेष कहानी भी समझ जायेगे, इस पत्र की कहानी भी समझ जायेगे, अब मैं आपको यह पत्र पढकर सुना रहा हूँ जो इस समय भी मेरे हाथ मे पडा हुआ है।

"पहली रात"

आदरणीय दीदी!

अनजाने सम्बोधन कई बार कितने सच निकलते हैं। आपसे सर्वप्रथम मिली थी तो सकोच हो रहा था, आपको क्या कह कर सम्बोधित करूँ। आपकी और मेरी उम्र मे कोई विशेष अन्तर नही था। आप कुछ ही साल बडी थी। यही सम्बोधन सर्वाधिक भाया।

"दूसरी रात"

आज कुछ पीडा ज्यादा ही है। इसलिए दिन मे आराम भी नही कर सकी। दिन मे कई बार प्रयत्न किया आपको पत्र लिखूँगी पर नर्सों ने बैठकर लिखने की इजाजत ही नही दी। रात को तो नर्सें भी चोरी-छिपे सो हो जाती हैं इसलिए अब लिख रही हूँ।

"तीसरी रात"

जया को मैंने तो केवल जन्म ही दिया है जन्म देने से ही कोई औरत माँ नही हो जाती। माँ बनने के लिए तो जब तक स्वय बेटी माँ बनने योग्य नही हो जाती तब तक उसकी देख भाल, परवरिश और रखवाली करनी पडती है। यह मैं कहाँ कर सकी, कब कर सकी। आपको अच्छी तरह से याद होगा दीदी, बीकानेर रेल्वे स्टेशन पर उतरते ही आपने जया को मेरी गोद से छीनकर अपनी गोद मे ले लिया था तथा छाती से चिपका लिया था। मैं तो यादवेन्द्र को लेकर भागी थी, लेकिन खडी भीड ने यही सोचा होगा कि जरूर इस लडकी ने इस बच्ची का अपहरण कर लिया था। मिलते ही मा ने उसे वापस ले लिया और सच ही तो है दीदी, "मैने जया का आपसे एक साल नौ माह तक अपहरण ही तो किया था, जब तक उसे आप को लाकर सम्भला नही दिया था। दरअसल तो जया को आपकी कोख से ही जन्म लेना चाहिए था।"

मुझे बहुत आश्चय हुआ था आपके व्यवहार पर। आपने तो एक क्षण मे सारी घटना ही आई गई कर दी। मैंने आपका इतना बडा अहित किया, यादवेन्द्र का इतना बडा अहित किया। दोनो की जिन्दगी बर्बाद कर दी। फिर भी आपने अपने मुँह से

मुझे उस दिन रेलवे स्टेशन पर एक गाली तक नही निकाली। उफ कितनी बडी सजा दी थी दीदी तुमने मुझको। मैं उस सजा को आज भी तिलमिला कर भोग रही हूँ। यदि उस समय सबके सामने आप मुझे गालियाँ दे देती तो मन बहुत हल्का हो जाता। तुम देवी हो देवी, सचमुच की देवी। में तुम्हे जीते जी कभी प्रणाम नही कर सकी, अब मरने से पूव प्रणाम करना चाहती हूँ।

"चौथी रात"

यादवेन्द्र के जेल जाने के बाद मेरे मम्मी-पापा ने बहुत चाहा कि मैं कही शादी कर लूँ। यहाँ चूँकि काफी बदनामी हो चुकी थी। अच्छा लडका मिलना मुश्किल था। मम्मी-पापा मुझे ले जाकर बगाल मे बसना चाहते थे, ताकि वही मेरी शादी किसी अच्छे से लडके से की जा सके। मैंने इसके लिए कभी भी सहमति नही दी। यह काम मेरे बस का नहीं था। दीदी क्या सात फेरे खा लेना ही शादी होती है? प्यार के बिना शादी का अथ ही क्या है दीदी और समपण के बिना प्यार का क्या अर्थ है? अपना सर्वस्व तो मैं यादवेन्द्र को समर्पित कर चुकी थी। झूँठ बोलना मैंने कभी सीखा ही नही। इसकी आवश्यकता भी नही पडी। इसलिए किसी भले मनुष्य को धोखा देना मुझे स्वीकार नही था।

मैंने किसी को भी सुख नही दिया। न मम्मी को, न पापा को, न यादवेन्द्र को और न जया को। मम्मी-पापा को कितना कष्ट हुआ था दीदी, मेरे इस व्यवहार से। इसे म ही समझ सकती हूँ, लेकिन आप भी तो एक औरत है, मेरी ही तरह। बताइये तो क्या मैंने यह सब जानबूझ कर किया था। क्या मुझे कोई दूसरा

लडका मिल ही नही रहा था जो मैं यादवेन्द्र को तुम्हारी अनुपस्थिति मे भगा कर ले गई। ये सब मेरे दोष के कारण नही हुआ था यादवेन्द्र का भी दोष नही मानती। यह तो देह की अवस्था और समाज की व्यवस्था का ही दोष था। यौवन के समुद्र में जब लहर उठती है तो वह किनारे से टकरा कर ही समाप्त होती है। ज्वार-भाटा का तो मौसम होता है, लहर उठने का न कोई मौसम होता है, न समय। यदि शान्त समुद्र मे किसी ने ढेला मार दिया तो लहरें उठेंगी ही। यौवन को तो अपराधी होने के लिए बहाना भर चाहिए। वह मुझे उस रात मिल गया था, जब यादवेन्द्र के मकान-मालिक घर आये थे। यदि मुझे विश्वास होता कि यादवेन्द्र के साथ एक रात बिता देने के बाद भी समाज मेरा पहला-पहला अपराध मान कर मुझे बाइज्जत क्षमा कर देगा तो मैं यादवेन्द्र को घर छोटकर भागने के लिए कभी नही कहती।

जिस समाज की सारी नैतिकता युवा पीढी के बिस्तरो पर ही नजर रखती हो, उस समाज मे यौन अपराध सर्वाधिक होते हैं। जिस समाज की सारी सास्कृतिक मान्यताएँ शयन-कक्ष से ही जुडी हुई हो, वहाँ ऐसी उदारता की आशा करना मूखता है। इस बात का मुझे पता था। इसीलिए मुझे भागना पडा था दीदी। अन्यथा तुम जानती हो मुझे शादी करने लायक लडको की कमी नही थी। बीती हुई बातो को याद करने से कष्ट ही होता है। हो सके तो मुझे माफ कर देना। मैंने सबसे बडा अहित तुम्हारा ही तो किया है दीदी, तुम्हारा पति जो तुमसे छीन लिया।

"पाँचवी रात"

जया काफी बडी हो गई होगी। जिद्दी हो गई है ऐसा सुनती हूँ। उसे एक बार देखने की इच्छा थी। उस दिन न्यायालय मे बयान देने आई थी उसी दिन जया को देखा था और उसी दिन यादवेन्द्र को देखा था। अब यहा पडे पडे विचार करती हूँ आप सबसे मिलूँ। पर अब सम्भव कहाँ है ? इतना समय ही कहाँ है ? इतना समय ही कहाँ है, मेरे पास। अब तो अन्त नजदीक आ चुका है दीदी। डाक्टरो ने ब्लड-केंसर बतला दिया है। यह एक लाइलाज बीमारी है दीदी। अब तो यह आखिरी पत्र ही समझो दीदी। इस जन्म मे मै तुम्हारे किसी के कोई काम नही आ सकी। अगले जन्म का क्या भरोसा है ? तुमसे क्षमा मागते हुए भी सकोच हो रहा है दीदी, क्षमा भी किस मुँह से मागूँ।

"छठी रात"

मैंने इस धरती पर जन्म लेकर भगवान से आज तक कभी कुछ भी नही माँगा। हर लडकी मन पसन्द पति मागती है, उसके लिए मैंने भगवान को तकलीफ ही नही दी। हर औरत अपने बेटे-बेटियो के शीघ्र से शीघ्र हाथ पीले कर देना चाहती हे। मैं भी चाहती थी कि जया की शादी मेरे सामने हो जाए। मैं जया को एक बार दुलहिन के वेष मे देख सकूँ। जो काय मेरी मम्मी नही कर सकी उसे मैं तो कम से कम कर सकूँ। मै जिस वेष को जन्मभर धारण नही कर सकी, उस वेष मे अपनी बेटी को देख कर मुझे कुछ शान्ति मिलती। शायद मै ऐसा देखकर अपने विगत को भूल सकती। तुम भी एक औरत हो। एक माँ भी हो, एक बहिन भी हो। औरत औरत की पीडा को बहुत जल्दी समझ लेती है, माँ बेटी की पीडा को बहुत जल्दी समझ

लेती है, बडी वहिन छोटी वहिन की पीडा को समझ लेती है। लेकिन एक चीज तुम भी नही समझ सकती। तुम्हे उसका जरा भी अनुभव नही है। एक कुवारी माँ की पीडा को तुम नहीं समझ सकती दीदी। एक कुवारी माँ की बेटी का कन्यादान करने के लिए इस समाज मे किराये का बाप भी नहीं मिल सकता। इसीलिए तुमसे एक वचन लेती हूँ दीदी। जया की शादी मे कन्यादान तुम और यादवेन्द्र करोगे। सबके सामने करोगे। तुम मेरी बात को कभी नही टालोगी दीदी, इसलिए यह भीख तुम्ही से माँग रही हूँ।

"सातवीं रात"

अब जाने का समय अत्यन्त ही निकट है दीदी। डाक्टरो ने मुझे कुछ ही दिनो का मेहमान बताया है। तुम यादवेन्द्र को जेल से छूटते ही मेरी यह इच्छा बता देना। उसे यह पत्र पढा देना। जिस समय यादवेन्द्र यह पत्र पढ रहा होगा मैं इस धरती पर नही रहूँगी, लेकिन तुम यादवेन्द्र को कहना मैंने बदले मे उससे कभी किसी चीज की कामना नही की थी। मैंने बिना मागे ही उसे अपना सर्वस्व समर्पित किया था। यादवेन्द्र से कह देना, गोमिया स्टेशन के पास दामोदर नदी के मुहाने पर बन क्वार्टरो मे बिताई मेरी ३६५ रातो के समपण की कसम है मेरी बेटी जया का कन्यादान समाज के सामने वही अपने हाथो से करेगा। मुझे भगवान पर पूरा विश्वास है। तुम यह काम जरूर कर सकोगी, जरूर कर सकोगी दीदी। यदि तुमने और यादवेन्द्र ने मेरी यह अन्तिम इच्छा पूर्ण नही की तो ससारी का भगवान से विश्वास उठ जाएगा। मेरी अच्छी दीदी, मैं तुम्हे एक बार फिर प्रणाम करती हूँ। आखिरी प्रणाम करती हू।

तुम्हारी
पूजा

पत्र पूरा हो चुका महाशय, कहानी भी समाप्त हो चुकी। घडी मे पाच वज चुके है। कल जया की शादी है। जया और विजय की। हम सन्यासी हैं, हमारी ईश्वर मे अटूट आस्था है। उस आस्था को बनाये रखने के लिए हमे कुछ भी करना पड जाय वह करेंगे। अवश्य करेंगे। हमारे लिए अपना और पराया सब समान होना है। प्रजा की मनाई हुई गरीब बेटी को अपनी बेटी मानने मे एक प्रजापति सकोच कर सकता है, हम सन्यासी नही कर सक्ते। दुनिया की हर असहाय बेटी मेरी बेटी है मुझे सन्यासी होकर यह मानने मे तनिक भी सकोच नही है। आस्था ही का दूसरा नाम भक्ति है महाशय। बिना आस्था के भक्ति सम्भव ही नही है। यदि एक भी ससारी की भगवान मे आस्था बनाये रखने के लिए किसी सन्यासी को एक तो क्या हजार बेटियो का पिता बन कर भी कन्यादान करना पडे तो उसे बेखटके कर देना चाहिए। इससे किसी सन्यासी का साधुत्व समाप्त नही होता।

जया की शादी मे आरती के साथ मिल कर कल मैं कन्या दान करूँगा। अवश्य करूँगा महाशय। मै ही कन्यादान करूँगा, जया का पिता बनकर कन्यादान करूँगा।

ससार एक महासागर है। पूजा इसमे तैरने वाली एक छोटी सी मछली थी। उस छोटी सी मछली ने महासागर की पानी की अतुल गहराई को अपने प्रेम से माप लिया था। मछली सागर के पानी मे ही जी सकती है, तट के रेत पर नही। उस महासागर की मछली ने अपनी इस आन-बान को जीवन पर्यन्त निभाया इसके लिए मैं उसे प्रणाम ही कर सकता हूँ महाशय, प्रणाम ही कर सकता हूँ।

मैं सुबह होने से पहले ही यह आश्रम छोड दूँगा। सदा सदा के लिए छोड दूँगा। क्या कहा महाशय, गृहस्थ बनने के लिए ? कदापि नहीं। गृहस्थी का मोह तो मैं कभी का त्याग चुका। वापस वहाँ तक लौट कर जाना मेरे लिए अब बिलकुल भी सम्भव नही है। फिर मैं कहाँ जाऊँगा, कहाँ जाकर रहूँगा ? यही तो जिज्ञासा है न आपकी महाशय। इस प्रश्न को मुझे सोचना नही होगा। न ही यह मेरी परेशानी है। मैंने एक दिन यायावर बन कर जीना चाहा था, अब वह समय आ गया है महाशय। धरती बहुत बडी है, प्रकृति बहुत उदार है। रमता जोगी और बहता पानी कहाँ जाकर रुकेगा, कुछ भी नही कहा जा सकता, महाशय, कुछ भी नही कहा जा सकता।
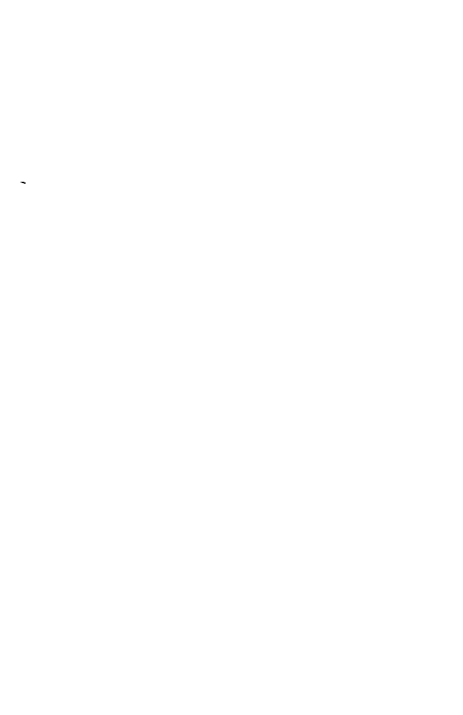
श्री मदनलाल शर्मा का जन्म 23 अक्टूबर, 1939 को सीकर जिला के ग्राम अनोखू मे हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा गाव की पाठशाला मे हुई। कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम कॉम, एल-एल बी तक शिक्षा प्राप्त कर, पिछले सोलह वर्षों से सीकर स्थित न्यायालयो मे दीवानी एव फौजदारी मुकदमो की वकीलत कर रहे हैं।

व्यवसाय से सफल वकील श्री शर्मा बचपन से ही साहित्य की विभिन्न विधाओ मे लगातार लिख रहे हैं। अब तक अनेक प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओ मे इनकी कविताएँ एव लेख प्रकाशित हो चुके है। पिछले कुछ समय से उपन्यास लेखन मे लगातार अग्रसर।

वतमान पता—मदनलाल शर्मा एडवोकेट
बिहारी माग,
पो –सीकर (राज)-332001